प्रकाशक
रतनलाल जैन,
मन्त्री, श्री सन्मति-ज्ञान-पीठ,
लोहामंडी, आगरा ।

वीर संवत्—२४७८ (चैत्र)
विक्रम संवत्—२००९ (चैत्र)
ईस्वी संवन्—१९५२ (एप्रिल)

मूल्य दो रुपया

मुद्रक
श्री हरकिशन कपूर,
आगरा यूनिवर्सिटी प्रेस,
आगरा ।

दो शब्द

पूज्यवर उपाध्याय श्री अमरमुनिजी रचित 'जीवन के चलचित्र' नामक पुस्तक पाठकों के समक्ष रखते हुए मुझे विशेष आनन्द हो रहा है। मुनि महाराज भावों के बड़े सफल चित्रकार हैं। उन्होंने प्रस्तुत पुस्तक में ऐसे अनेक शब्द-चित्र अङ्कित किये हैं, जिनसे मानवता का बहुत हित-साधन हो सकता है। मुनिजी की लेखन-शैली की विशेषता और उसके द्वारा कथाओं का व्यावहारिक जीवन के साथ सम्बन्ध स्थापित करना दोनों ही असाधारण बातें हैं। मैं तो समझता हूँ, साहित्य पर साधारण जनता का भी उतना ही ममत्व और अधिकार है जितना सुशिक्षित विद्वानों का। जीवनोपयोगी प्रश्नों और समस्याओं को साहित्यिकता के नाम पर शब्दाडम्बर अथवा भाषा के जगड्वाल मे छिपाना उन्हें सर्वसाधारण की दृष्टि से ओझल कर देना है। प्रस्तुत पुस्तक में पाठकों तथा श्रोताओं की सुविधा एवम् सुरुचि का पूरा ध्यान रखा गया है। जहाँ इस पुस्तक से उनका मनोरंजन होगा वहां उन्हें शिक्षा भी यथेष्ट मिलेगी। सन्मति-ज्ञान-पीठ यह भेट पाठकों के सामने रखते हुए अपने को गौरवान्वित समझता है।

'रतन-निवास'
आगरा
महावीर-जयन्ती
चैत्र-शु० १३, सं० २००६

रतनलाल जैन
प्रधान मंत्री
सन्मति-ज्ञान-पीठ

श्रद्धा-पुष्प

भारतीय संस्कृति का सम्बन्ध आँखों की अपेक्षा कानों से अधिक है। अर्थात् देश की अधिकांश जनता कथा-वार्त्ता, उपदेश-व्याख्यान, कविता-कहानियाँ, कहावत-कथानक और गीत-संगीत को सुन कर ही परम्परागत प्राप्त भारत-संस्कृति का प्रचार और प्रसार करती रही है। इसी रूप में यह संस्कृति अब तक सुरक्षित भी है। जनपदों में जो गीत-संगीत और कहावत-कहानियाँ प्रचलित हैं, वे सब भारतीय भावनाओं और प्राचीन सभ्यता-संस्कृति की द्योतक हैं। उनके सीधे-सौम्य और सरल शब्दों में संक्षिप्त रूप से जो भद्र भाव भरे हुए हैं, वे गम्भीर चिन्तन और विस्तृत विवेचन द्वारा ही जाने जा सकते हैं। जितनी ही गहराई से इन तत्त्वों का मनन किया जायगा, उतना ही आनन्द और उपदेश प्राप्त होगा।

सुने-सुनाये ज्ञान की ही महिमा है कि आज इस देश के अपठित और निरक्षर व्यक्ति भी, ज्ञान-सम्पन्न दिखाई देते हैं। वे सदाचार, नीति, धर्म्म, दर्शन, इतिहास-सम्बन्धी प्रायः उन सभी बातों को जानते हैं, जिन्हें दूसरे देशों की शिक्षित जनता भी अच्छी तरह नहीं जान पाती। निःसन्देह हमारे प्राचीन पूज्य पुरुषाओं ने, ज्ञान-विस्तार करने में सदैव सुरुचि-पूर्ण सुबोध साधनों का आश्रय लिया और कथा-कहानियों द्वारा धर्म्म के मर्म्म को समझाने की यथेष्ट कोशिश की। गम्भीर ज्ञान-गरिमा का विवेचन करते हुए भी दृष्टान्तों की उपयोगिता को कभी विस्मृत नहीं किया। वस्तुतः साहित्य वही है जो शरीर को स्वस्थ, मन को विशुद्ध और आत्मा को उच्च बना कर

विश्व-कल्याण की ओर प्रेरित करता है। जिस साहित्य में जीवन या समाज को ऊँचा उठाने की शक्ति नहीं, उसे साहित्य कहना साहित्य शब्द का उपहास करना है। कल्पना-प्रसूत विस्तृत व्योम में निरुद्देश्य रूप से उच्छृङ्खलतापूर्वक विचरण करना साहित्य की सीमा में नहीं आता।

सुप्रसिद्ध जैन विद्वान् और विचारक पूज्य श्री अमरमुनिजी उपाध्याय ने अनेक उपयोगी ग्रन्थ रचकर हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि की है। वे गम्भीर ज्ञान-सम्पन्न उच्च कोटि के तपस्वी सन्त हैं। उनकी लेखनी और वाणी से निःसृत विमल विचार-धारा का अमृत-रसपान कर भावुक भक्त-समुदाय को अपार आनन्द प्राप्त होता है। इन्हीं मुनि महाराज ने इस पुस्तक में कुछ लोकोक्तियों और लोक-कथाओं को संगृहीत कर उनमें अपनी अलौकिक लेखनी द्वारा प्राण-संचार किया है। लोक में प्रचलित सीधी-सादी उक्तियाँ मानव-जीवन के लिये किस प्रकार कल्याण-कारिणी सिद्ध हो सकती हैं, इसी तत्व को पूज्य उपाध्यायजी ने दृष्टि-पथ में रखा है। मेरा विश्वास है कि जो व्यक्ति इन कहानियों को पढ़-सुनकर हृदयङ्गम करेंगे वे जीवन सम्बन्धिनी कितनी ही गूढ़ गुत्थियों को सुलझाने में अनायास ही सफल तथा समर्थ होंगे। उपदेश की कड़वी कोयनेन को माधुर्य्य-मधु में पाक कर सर्वसाधारण के समक्ष रखने में मुनि महोदय बड़े सिद्धहस्त हैं। जिस प्रकार उनकी विमल वाणी से फूल झड़ते हैं उसी प्रकार ललित लेखनी से रस-बिन्दु टपकते रहते हैं। पाठक और श्रोता दोनों ही बड़ी सुरुचि से इन कलित कहानियों का रसपान कर कृतार्थ हो सकते हैं। कोई भी कहानी सन्देश-शून्य या उद्देश्य हीन नहीं है। इन कहानियों को शब्द-समूह की सजीव प्रतिमा कहा जाय तो कुछ अत्युक्ति न होगी।

पुस्तक का नाम भी बड़ा आकर्षक है—'जीवन के चलचित्र' इन चलचित्रों में धर्म्म की सचाई, अतीत की गहराई और लोक की सुनी-सुनाई बातों का तात्विक और सात्विक दृष्टि से विवेचन किया गया है, यही इनकी विशेषता है। प्रत्येक चित्र स्वाभाविक चित्रण-कला का सुन्दर प्रतीक है।

प्रत्येक चित्र भव्य भावना या भावुकता के मनोमोहक रंगों की रंगीनी पाकर खिल उठा है। उसमें मानवता की विकास-भावना के अतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं देता। चित्रकार अपने कौशल में पूर्णरूप से सफल हुए हैं, अतएव वे हमारी बधाई के पात्र हैं, और उनकी इस रुचिर रचना का जितना अभिनन्दन किया जाय, थोड़ा है।

आगरा
शङ्कर-सदन,
वैशाख कृ० १. २००६

हरिशङ्कर शर्मा

पुनश्च—

प्रस्तुत पुस्तक में कुछ कहानियाँ, श्री अयोध्याप्रसाद जी गोयलीय, श्री कन्हैयालालजी मिश्र प्रभाकर, भदन्त आनन्द कौशल्यायन, श्री महात्मा भगवानदीनजी, तथा पं० श्रीरामजी शर्मा आदि की हैं, जो 'ज्ञानोदय' 'जैन-जगत' एवं 'विशाल-भारत' आदि पत्रों से ली गई हैं।

संपादक मुनिश्री जी के हृदय-रोग-ग्रस्त हो जाने एवं दूर होने के कारण, प्रकाशन की शीघ्रता में, हम उनसे ठीक तरह संपर्क स्थापित नहीं कर सके; अतएव विद्वान लेखकों का यथा-स्थान उल्लेख नहीं किया जा सका। अब मुनिश्री की सूचना के अनुसार उक्त भूल का परिमार्जन किया जाता है।

मंत्री,

सन्मति ज्ञान पीठ, आगरा.

विषय-सूची

पाठ	विषय	पृष्ठ-संख्या

इधर-उधर की सुनो-सुनाई में से

—:०:—

जीवन के चलचित्र



उपाध्याय श्री अमर मुनि

धर्म-ग्रन्थों की सचाई में से

अमृतयोगी सन्त

एक सन्त अपने-आप में मगन कहीं चले जा रहे थे। मार्ग में एक चरवाहे ने उन से कहा— 'महाराज! इस पथ में तो एक भयंकर सर्प रहता है। उसकी विषैली फुफकार से मनुष्य की तो कौन कहे, पशु-पक्षी भी जीवित नहीं रह सकते। अतएव आप दूसरे पथ से जाइए।'

सन्त ने जैसे उसकी बात सुनी ही नहीं। वह चुप-चाप उसी मार्ग से चलते रहे, और सीधे सर्प के द्वार पर जाकर खड़े हो गए। आज उनके अन्तर्मन में विष को अमृत बनाने की एक विलक्षण कामना जाग उठी थी।

थोड़ी देर के पश्चात् सर्प विषैली वायु के बादल उड़ाता हुआ बाँबी से निकला। वह आश्चर्य में था कि 'यह कौन है, जो मेरे शिर पर ही आकर खड़ा हो गया है। क्या इसे मृत्यु का भय नहीं है?'

सर्प ने क्रोध में आकर सन्त के पैरों में मुँह मारा, किन्तु सन्त फिर भी शान्त थे. आत्मप्रसन्नता की अमृत लहरों में तैर रहे थे। कुछ देर विष और अमृत का यह द्वन्द्व युद्ध चलता रहा। आखिर अमृत ने विष पर विजय प्राप्त की।

सर्प को आत्म-बोध मिला। वह अपनी भूलों पर पश्चात्ताप करता हुआ बिल में घुस गया। उस दिन से साँप ने किसी को काटा नहीं. किसी को मारा नहीं। वह सताया गया, फिर भी शान्त ही रहा और अमृतभाव की उपासना में लगा रहा!

यह सन्त भगवान् महावीर थे। इनका मिशन था, विष के बदले में भी अमृत बाँटना। जिसके अन्दर जहर न हो, उसके लिए दुनिया में कहीं भी जहर नहीं है।

यह कथानक विराट् आत्मशक्ति का एक छोटा-सा निदर्शन है।

———

को ऽ रुक् ?

उपनिषद् में एक कथा आती है, जिस में एक जिज्ञासु किसी तत्त्ववेत्ता ऋषि से पूछता है—"को ऽ रुक् ? को ऽ रुक् ? नीरोगी कौन है ? नीरोगी कौन है ?"

विचारक ऋषि ने अभक्ष्य, अशुद्ध तथा अधिक खाने की प्रवृत्ति की आलोचना करते हुए कहा—"हितभुक्, मितभुक्।"

ऋषि के उत्तर का भावार्थ यह है कि जो पथ्य खाने वाला और कम खाने वाला है, वह नीरोगी है, स्वस्थ है। हिन्दी का देहाती कवि घाघ भी कहता है:—

"रहै निरोगी जो कम खाय,
बिगरै काम न, जो गम खाय!"

———

आचार्य शंकर और चाण्डाल

एक दिन प्रातः काल आचार्य शंकर गंगा-स्नान कर अपने आश्रम की ओर लौट रहे थे, तो उन्होंने मार्ग में सामने से एक चाण्डाल को अपने तीन-चार कुत्तों के साथ आते देखा। आचार्य ने उस अछूत चाण्डाल से जरा दूर हट जाने का आग्रह किया, परन्तु उसने आचार्य की आज्ञा मानने से इन्कार किया और पूछा—"हे स्वामिन्! आप किस को अपवित्र मानते हैं? मेरे इस नश्वर जड़ शरीर को अथवा अमर आत्मा को? किससे दूर हट जाने का आदेश देते हैं? जरा साफ बता दीजिए। मैं आपकी बातें ठीक-ठीक समझ नहीं पाता। आप तो अद्वैतवादी महात्मा हैं न? फिर छुआछूत का भेद-भाव आप के दिल में कैसे पैदा होता है?"

एक नीच चाण्डाल के मुँह से ये तर्क-सिद्ध बातें सुन कर आचार्य को बड़ा विस्मय हुआ। वे थोड़ी देर मन-ही-मन उस की बातों पर गंभीरता से विचार करने लगे। आखिर उन्हें अपनी भूल मालूम हो गई। वे विनम्र भाव से उस चाण्डाल के पैरों पर गिर पड़े और क्षमा माँगी।

लोगों का विश्वास है कि वह चाण्डाल स्वयं भगवान् शिव-जी थे, जो शंकराचार्य की परीक्षा लेने के इरादे से एक पतित अछूत के रूप में आये थे। चाहे जो हो, इस घटना से एक बात जरूर मालूम हो जाती है और वह यह कि एक हरिजन ने श्री शंकराचार्य को अद्वैतवाद के व्यावहारिक आदर्श का सच्चा स्वरूप सिखा दिया था, जिस के बिना उनका वेदान्त मत अधूरा रह जाता।

मुनि और मौन

एक वार कुछ भले घराने के भिक्षु वर्षावास के लिए एक आश्रम में ठहरे। उन्होंने सोचा "क्या उपाय किया जाए कि हम सब विवाद रहित हो विहार करें"। तब उन्होंने अपने-अपने रहने के लिए नियम बनाए। जो भिक्षा माँगकर पहले आए, वह आसन विछाए, पीने और धोने का पानी रखे। बाद में जो आए, वह जो-कुछ बचा हो, खाए। आसन आदि समेटे। चौका साफ़ करे। पानी के बरतनों को खाली देखे तो भर दे। न भर सकता हो, तो इशारे से दूसरे को कहे पर कोई किसी से बोले नहीं।

इस तरह मौन रहकर उन भिक्षुओं ने चौमासा विताया। चौमासा विताने के बाद वे सब बुद्ध के दर्शन को गए। बुद्ध ने कुशल-क्षेम पूछा। उन्होंने अपनी सब कहानी कही, जैसे कि रहने के नियम बनाकर उन्होंने मौन रहकर चौमासा विताया था।

भगवान् बुद्ध ने उन की कहानी सुनकर कहा— "इन मोघ पुरुषों ने पशुओं की तरह ही एक साथ सहवास किया है, फिर भी वे समझते हैं कि हमने अच्छी तरह वर्षावास किया।" इन्होंने भेड़ों की तरह एक साथ सहवास किया, फिर भी ये समझते है कि इन्होंने अच्छी तरह सहवास किया है। भगवान् ने कहा है—"न मोनेन मुनी होति"—मौन रहने से मुनि नहीं होता। "यो मुनति उभो लोके मुनी तेन पवुच्चति"—जो दोनों लोकों का मनन करता है, वही मुनि होता है।

विनय पिटक—१८६

स्वर्ग किसके लिए ?

धर्मराज युधिष्ठिर जीवन की अन्तिम महायात्रा के लिए हिमालय में विचरण कर रहे थे। द्रौपदी और शेष पाण्डव हिमराशि मे गल चुके थे। एक मात्र साथी रहा था मैदान से साथ-साथ चला आने वाला कुत्ता।

महाराज युधिष्ठिर और कुत्ता दोनों बढ़े जा रहे थे हिमालय के ऊँचे हिम-शिखरों की ओर। सहसा इन्द्र का भेजा मातलि रथ लेकर उपस्थित हुआ।

"महाराज! देवराज इन्द्र आपको शीघ्र ही स्वर्ग मे बुला रहे हैं, कृपया रथ पर सवार हो जाएँ।" मातलि ने प्रार्थना की मुद्रा में कहा।

"साथी! आओ अब स्वर्ग चलें। तू रथ पर पहले चढ़। तेरा अधिकार प्रथम है।" युधिष्ठिर ने कुत्ते को सम्बोधित करते हुए कहा।

"धर्मराज! यह क्या करते हैं? कुत्ते को यहीं छोड़ दीजिए। कुत्ता स्वर्ग में नहीं जा सकता।" मातलि ने स्पष्टीकरण करते हुए कहा।

"अरे! यह भी तो ईश्वर का पुत्र है। जानते हो, कितनी दूर से आशा और प्रेम के पाश मे बँधा यह हमारे साथ-साथ चल कर आया है? भला. यह मँझधार में यहाँ अकेला कैसे छोड़ा जा सकता है?"

"धर्मराज ! कुत्ता फिर भी कुत्ता ही है। पधारिए, रथ पर बैठ कर स्वर्ग चलें। क्या करूँ, कुत्ता स्वर्ग में नहीं जा सकता।"

"तो मातलि ! मुझे तुम्हारा स्वर्ग नहीं चाहिये। अपने परम देवता इन्द्र से कह देना कि युधिष्ठिर स्वर्ग के द्वार पर आये हुए कुत्ते को इसलिए छोड़कर नहीं आया क्योंकि कुत्ते का अपमान किया गया है। यदि स्वर्ग में भी इतना अन्याय है, तो मेरी धरती ही क्या बुरी थी ? युधिष्ठिर अपने साथी को छोड़ कर, फिर भले वह कुत्ता ही हो, स्वर्ग जाना पसन्द नहीं करता। साथी के साथ मेरे लिए नरक भी स्वर्ग है। और साथी के विना स्वर्ग भी नरक !"

धर्मराज युधिष्ठिर के इतना कहते ही कुत्ता एक देवता बन जाता है, और वह युधिष्ठिर के चरणों में प्रणाम करके कहता है :—

"धर्मराज ! मैं धर्म हूँ। कुत्ता बन कर तुम्हारे पीछे-पीछे तुम्हारी परीक्षा लेने आया था। मैं यह देख रहा था कि आपकी स्वर्ग की तृष्णा अपने व्यक्तिगत सुख के लिए है, या सिद्धान्तों की विजय के लिये ? आप अपने सर्वोदय के सिद्धान्त में विजयी हुए हैं। आज आपका स्पर्श करके मैं पवित्र हो गया हूँ।"

वस्तुतः स्वर्ग उन्हीं के लिए है, जो अपने पड़ौसी के हित के लिए उसे ठुकराने की क्षमता रखते हैं।

क्षमामूर्ति महावीर

भारत के एक महान् सन्त, आज से लगभग दो हजार पाँचसौ इक्कीस वर्ष पहले, नदी के तट पर ध्यान लगाए खड़े थे। उनके चारों ओर हरा-भरा जंगल था और शीतल सुगन्धित बयार मन्थर गति से बह रही थी। सन्त ध्यान में लीन थे, नेत्र बन्द किए हुए, अपने आप मे अपने को खोजते-से !

अचानक उनके सामने एक ग्वाला आकर खड़ा होगया, अर्धनग्न और कुछ चिन्तित-सा ! वह बोला—"महाराज ! आपने मेरे बैल तो नहीं देखे ? इसी जंगल मे चर रहे थे।"

सन्त तो ध्यान-मग्न थे। भला ग्वाले की बात कैसे सुनते और कैसे उसका उत्तर देते ? उनको मौन देख, ग्वाला अपने बैल ढूँढता हुआ आगे चला गया। थोड़ी देर बाद वह फिर वहीं आ पहुँचा, तो देखता क्या है कि बैल सन्त के आस-पास चर रहे हैं, और सन्त उसी तरह नेत्र बंद किए खड़े हैं।

अब तो ग्वाले का क्रोध भड़क उठा। वह चीखकर बोला "बस, बस मैं समझ गया ! तू महात्मा नहीं, पाखण्डी है। तूने ही चुराने की नीयत से बैल छिपा रक्खे थे। अच्छा, अब ले तुझे तेरी करनी का कैसा अच्छा मजा चखाता हूँ।"

यह कह कर ग्वाला सन्त पर तड़ातड़ लाठियाँ, ढेले और पत्थर बरसाने लगा। परन्तु सन्त ज्यों के त्यों शान्त भाव से खड़े रहे, न कुछ हिले-डुले और न कुछ बोले-चाले। अब तो

ग्वाले के आश्चर्य की सीमा न रही! वह एक दम सन्त के चरणों पर गिर पड़ा और दीन स्वर में बोला—"महाराज! मेरा अपराध क्षमा कीजिए। मैं मूर्ख हूँ, अज्ञानी हूँ।"

सन्त के हृदय के कण-कण पर प्रेम की गंगा बह रही थी। अपराधी पर भी इतना अधिक वात्सल्य भाव! उनके अन्तर्मन ने कहा—'वत्स, तुम्हारा कल्याण हो।'

यह क्षमाशील कौन थे? यह थे भगवान् महावीर स्वामी, जो ज्ञान पाने से पहले शून्य वन भूमि में आत्म-साधना कर रहे थे, अपने जीवन को माँज रहे थे।

ईसा की क्षमा

ईसा से एक आदमी कटु वचन बोल रहा था और वे उस से नम्र और मधुरता से बातें कर रहे थे।

एक दूसरे आदमी ने देखा तो कहा—"आप इस दुष्ट से ऐसी नरमी का बर्ताव क्यों कर रहे हैं?"

ईसा ने हँस कर कहा—"वस्तु में से वैसा रस तो टपकेगा, जैसा कि उस में होगा।"

जड़ न उखाड़िए

परम्परागत अनुश्रुति है कि एक वार भगवान् बुद्ध अपने संघ सहित कौशल में गए। वहाँ एक जमींदार ने उन्हें भोजन के लिए निमन्त्रित किया। भोजन के बाद वह बुद्ध सहित संघ के सब लोगों को अपने बाग़ की सैर कराने ले गया। बाग़ बड़ा सुन्दर था, परन्तु उस के बीचों-बीच एक बड़ा-सा स्थान था, जिस पर एक भी पेड़ न था। संघ के लोगों ने ज़मीदार से पूछा—'बात क्या है ? इस स्थान पर वृक्ष क्यों नहीं ?

ज़मीदार ने नम्रतापूर्वक कहा—"महात्मागण ! बात यह थी कि जिन दिनों यह बाग़ लगाया जा रहा था, उन दिनों मैंने एक लड़के को इस बात पर नियुक्त किया था कि वह वृक्षों को सींचे। पहले तो वह सब वृक्षों को एक समान पानी देता रहा, बाद मे उसे ध्यान आया कि इस से क्या लाभ ? जिस पौधे की जड़ जितनी बड़ी हो, उसे उतना ही अधिक पानी देना चाहिए, और जिसकी जड़ छोटी हो, उसे उतना ही कम ! उसने यही करना शुरु किया। वह पहले पौधों की जड़ उखाड़ कर उसकी लंबाई देखता, और बाद में उन्हें पुनः गाड़ कर उसी अनुपात से पानी देता। परिणाम यह हुआ कि सभी पौधे सूख गए।

मनुष्य को अति तर्क के फेर मे नहीं पड़ना चाहिए। किसी को कुछ देना हो तो सहज भाव से अपनी शक्ति-अनुसार दे डालिए। लंबी बहस के द्वारा उसकी जड़ उखाड़ कर देखने का प्रयत्न ठीक नहीं है। किसी का गुप्त भेद खोल कर क्या लेना है ? ऐसा करने से उपकार का बाग़ सूख जाता है।

अहिंसा या हिंसा ?

एक चोर एक भिक्षु को बहुत तंग करता था। भिक्षु बेचारा बहुत असमर्थ था, करता भी क्या ? चोर अपनी हरकत से बाज़ नहीं आता था। एक दिन चोर ने साधु को बहुत तंग किया। साधु ने भी उस से तंग आकर एक रज्जु-यन्त्र बना रखा था। साधु की वस्तुएँ लेते समय चोर का हाथ उस रज्जु-यन्त्र पर पड़ा और वह उस से अपने आप ही बँध गया।

चोर के बँध जाने पर भिक्षु ने उसकी पीठ पर ख़ासा अच्छा प्रहार किया, और कहा-

"बुद्धं सरणं गच्छामि।"

फिर दूसरा प्रहार किया और कहा—

"धम्मं सरणं गच्छामि।"

फिर तीसरा प्रहार किया, और कहा—

"संघं सरणं गच्छामि।"

तीन प्रहारों से चोर तिलमिला गया और कहा कि मुझे अब छोड़ दो, जो तुम कहोगे, वही करूँगा। भिक्षु ने उसे छोड़ दिया।

तब चोर ने भिक्षु से कहा कि यह तो बड़ा कुशल था कि कृपालु बुद्ध ने तीन ही शरण का विधान किया था। यदि कहीं चार शरण का विधान होता तो तुम मुझे मार ही डालते।

—दिव्यावदान [चीनी ग्रन्थ]

हिंसा या अहिंसा ?

मालव देश के कुछ म्लेच्छ शबर लोग, जो लूटमार का काम करते थे, एक बार किसी गॉव पर चढ़ आए। कुछ आर्यिकाओं और एक क्षुल्लक साधु को उठा ले गए। जंगल मे जा कर उन्होंने उन को एक लुटेरे को सौंप दिया और वे सब पास के किसी गॉव से दूसरे लोगों का अपहरण करने चले गए।

थोड़ी देर बाद पहरेदार लुटेरे को प्यास लगी, तो उसने कहा—'तुम यहॉ चुपचाप बैठे रहना, मैं नीचे बावड़ी मे जाकर पानी पी आता हूँ।, वह पानी पीने बावड़ी मे उतर गया, गरमी थी, स्नान भी करने लगा।

क्षुल्लक ने सोचा, 'क्या हम सब मिलकर भी इस अकेले आदमी के लिए पर्याप्त नहीं हैं ? यदि यह अवसर चूक गए तो फिर इन साध्वियों का क्या होगा ? क्या इन सब को अपने धर्म से—सतीत्व से—हाथ न धोना पड़ेगा ?'

क्षुल्लक ने साध्वियों को चोर पर आक्रमण करने का इशारा किया। सबने आस-पास से बड़े-बड़े पत्थर इकट्ठे कर लिए। क्षुल्लक ने एक बड़ा पत्थर अचानक ही चोर के ऊपर फैंक कर मारा। उसी समय सब साध्वियों ने भी मिल कर एक साथ चोर पर पत्थर बरसाने शुरू कर दिए। अन्ततः चोर मर गया, और इन सब को उसके पंजे से छुटकारा मिला।

यह कथा जैन-साहित्य के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ व्यवहार भाष्य की है, जो जैन धर्म के अहिंसा सम्बन्धी दृष्टिकोण को नये रूप में उपस्थित करती है। जो कुछ क्षुल्लक साधु ने किया, वह उस समय उसका कर्त्तव्य था। यदि नहीं, तो फिर आप क्या सुझाव देते हैं ? बाहर की क्षणिक अहिंसा या हिंसा के फेर मे नारी-जीवन को सदा के लिए गुंडों के हाथ बर्बाद कर देना, क्या कोई बहुत बड़ा धर्म है, आदर्श है ?

सिर का मोल

सम्राट् अशोक भिक्षुओं की वन्दना किया करते थे। उनके मन्त्री यश को यह बात अच्छी न लगी। उसने अशोक से कहा—"महाराज, इन बुद्ध-मत के साधुओं मे सब जाति के लोग होते हैं। अपने अभिषिक्त सिर को इनके आगे झुकाना ठीक नहीं है।" अशोक ने यश को उस समय कुछ उत्तर नहीं दिया और थोड़े दिन बाद बकरे-भेड़ आदि मेध्य प्राणियों के सिर मँगाकर उनको बेचने के लिए अपने लोगों को भेजा। यश को मृत मनुष्य का सिर देकर बेच लाने को कहा। बकरे आदि के सिर बिक गए। कुछ पैसा भी मिला। पर मनुष्य का सिर किसी ने भी नहीं लिया। तब अशोक ने यश से कहा कि इस मनुष्य के सिर को बिना दाम लिए ही किसी को दे दो। पर उस सिर को बिना दाम के भी किसी ने नहीं लिया। लेने की बात तो दूर, जहाँ यश सिर ले जाता, लोग घृणा करते। उसे कोई पास भी खड़ा न होने देता। बाद मे यश ने अशोक से कहा कि मुफ्त में भी इस सिर का लेने वाला कोई नहीं है।

सम्राट् अशोक ने पूछा—"इसे लोग मुफ्त भी क्यों नहीं लेते?" यश ने कहा—"महाराज, इस सिर से लोग घृणा करते हैं।" अशोक ने फिर पूछा—"क्या इसी सिर से लोग घृणा करते हैं, या सब मनुष्यों के सिर से घृणा करते हैं?" यश ने कहा—"महाराज, किसी भी आदमी का सिर काट कर ले जाया जाए, लोग उससे घृणा करेंगे।"

सम्राट् ने मुस्कराते हुए फिर पूछा—"क्या मेरे सिर का भी यही हाल होगा ?" यश उत्तर न दे सका। उसे डर लगा कि सच्चा उत्तर देने पर कहीं सम्राट् को बुरा न लगे। पर बाद में जब अशोक ने उसे अभयदान दिया, तो उसने कहा—"महाराज, आपके सिर से भी लोग इसी तरह घृणा करेंगे।" तब सम्राट् ने कहा—"जो सिर इस तरह का घृणापात्र है, वह यदि भिक्षुओं के आगे झुका, तो तुमको बुरा क्यों लगा ?"

—दिव्यावदान

सत्य अनन्त है

एक बार तथागत बुद्ध ने अपनी मुट्ठी में कुछ सूखी पत्तिय लेकर अपने प्रिय शिष्य आनन्द से पूछा—"मेरे हाथों की पत्तियों के अतिरिक्त कहीं और भी पत्तियाँ हैं ?"

आनन्द ने उत्तर दिया—"पतझड़ की पत्तियाँ सभी तरफ गिर रही हैं। और वह इतनी हैं कि उनकी गिनती नहीं हो सकती।"

तब बुद्ध ने कहा—"इसी तरह मैंने भी तुम्हें मुट्ठी-भर सत्य दिए हैं, परन्तु उनके अतिरिक्त और भी सत्य हैं, इतने कि उनकी गिनती नहीं हो सकती।"

युधिष्ठिर और यक्ष

एक बार धर्मराज युधिष्ठिर द्रौपदी और अपने चार भाइयों के साथ वनवास मे घूम रहे थे और घूमते-घूमते विराट् नगरी के पास वन में आ पहुँचे थे। दोपहर का समय था, प्यास लगी। पानी के लिए घूमते रहे, परन्तु नहीं मिला। आखिर युधिष्ठिर आदि सब थक कर बैठ गए और नकुल को पानी लाने भेजा। वह तलाश करता-करता एक जल से भरे हुए सुन्दर तालाब पर पहुँच गया। ज्यों ही पानी भरने लगा, एक जोर की आवाज आई। तालाब के रक्षक यक्ष ने कहा—"बोलो, तुम कौन हो? यदि मेरे प्रश्नों का समाधान किए बिना हठात् पानी लेने का प्रयत्न करोगे तो समाप्त हो जाओगे।"

नकुल ने नहीं माना। इसलिए वह यक्ष की शक्ति से प्राणहीन-सा हो गया, फलत मूर्छित होकर जमीन पर गिर पड़ा। बहुत देर तक नकुल की प्रतीक्षा की, किन्तु जब वह न लौटा तो सहदेव को भेजा। उसका भी वही हाल हुआ। अर्जुन और भीम भी गए किन्तु उनकी भी वही स्थिति हुई। अन्त मे धर्मराज युधिष्ठिर पहुँचे। यक्ष ने उनसे भी यह कहा कि—"यदि प्रश्न का उत्तर न दोगे तो तुम्हारा भी वही हाल होगा, जो तुम्हारे चार भाइयों का हुआ है।"

धर्मराज ने सभी प्रश्नों का नम्रतापूर्वक उत्तर दिया। इस पर यक्ष ने प्रसन्न होकर कहा—"मैं आपके समाधान से बहुत प्रसन्न हूँ। आप यथेष्ट पानी ले जा सकते हैं और आपके

जो ये चार भाई मरे पड़े हैं, उनमें से एक को उठा लीजिए, मैं उसे जीवन दान दे दूंगा।"

यक्ष ने पूछा—"आप किसे उठायेंगे?" धर्मराज ने कहा—"नकुल को।" यक्ष को बड़ा आश्चर्य हुआ कि "यह अर्जुन और भीम जैसे समय पर काम आने वाले महां पराक्रमी बन्धुओं को छोड़ कर नकुल को क्यों बचाना चाहता है? नकुल बेचारा क्या सहयोग दे सकता है?"

धर्मराज ने उत्तर दिया—"नकुल मेरा सब से छोटा भाई है, और छोटी माता का लड़का है। उसे जीवन मिलने से मुझे सर्वाधिक आनन्द होगा क्योंकि जिस प्रकार मेरे अस्तित्व से मेरी माता की स्मृति सुरक्षित है, उसी प्रकार नकुल के जीवित होने से मेरी छोटी माता की स्मृति भी सुरक्षित रहेगी। अन्यथा उसका स्मृति-चिन्ह क्या शेष रहेगा?"

युधिष्ठिर की इस प्रकार विराट् धर्मबुद्धि देखकर यक्ष अत्यन्त प्रसन्न हुआ, और अकेले नकुल को नहीं, अपितु चारों भाइयों को जीवन-दान दे दिया।

इस कथा का भावार्थ यह है कि छोटे भाइयों की चिन्ता करने से सब का काम बन जाता है। हमें अपने हृदय में बड़ों की अपेक्षा छोटों को अधिक स्थान देना चाहिए।

असली धन

भगवान् बुद्ध एक वृक्ष के नीचे ध्यानावस्थित बैठे हुए थे। सहसा ज़ोर-ज़ोर से रोने-चिल्लाने की आवाज़ कानों में पड़ी। भगवान् बुद्ध ने नेत्र खोले। देखा, एक आदमी बदहवास चिल्लाता हुआ उनकी ओर भागा आ रहा है। पास आने पर भगवान् ने पूछा—"भद्र ! इतने विकल क्यों हो ?"

"भगवन् ! मैं बर्बाद होगया ! वह देखिए, डाकू मेरे परिवार को लूट रहे हैं। लाखों के रत्न आभूषण छीन लिए हैं।" —आगन्तुक ने आर्त मुद्रा में हाथ जोड़ते हुए कहा।

बुद्ध शीघ्रता से डाकुओं के पास पहुँचे। उन्हें उपदेश दिया। डाकू बुद्ध के उपदेश से इतने प्रभावित हुए कि लूटा हुआ सब धन धनिक को लौटा दिया और भविष्य में डाका डालने का परित्याग कर दिया।

बुद्ध ने अब धनिक से कहा—"तुम इसी धन के लिए इतने विकल हो रहे थे। यह धन तो आज है, कल नहीं। यह एक दिन कमाया जाता है, और खोने के बाद एक दिन फिर कमाया जा सकता है। परन्तु तुम्हारा जो अनमोल सच्चा धन है, वह दिन-रात प्रतिक्षण लुटा जा रहा है, तुम उसके लिए तनक भी विकल नहीं होते !"

"देव ! मेरा वह कौन-सा धन है, जो दिन-रात प्रतिक्षण लुट रहा है, परन्तु जिसका मुझे पता भी नहीं ?"

"वत्स ! वह तेरा आत्म-धन है। सत्य और अहिंसा आदि निज गुण ही वस्तुतः मनुष्य की असली संपत्ति है। वह एक बार लुट जाने के बाद दुबारा प्राप्त होनी सहज नहीं है। विषय-वासनाओं के द्वारा वह सम्पत्ति प्रतिक्षण लूटी जा रही है और तुझे उसका तनक भी पश्चात्ताप नहीं।"

धनिक अन्तर में जाग उठा। कहते हैं, उसने अपनी सब सम्पत्ति परोपकार के पवित्र पथ पर सहर्ष समापत कर दी।

हनुमान की आदर्श भक्ति

एक बार हनुमानजी से किसी ने पूछा—'आप इतने बड़े बलवान् भीमकाय हैं, फिर भी आपने रावण का नाश क्यों न कर दिया ?

हनुमानजी ने कहा—'वह राक्षसाधम मेरे सामने कुछ भी चीज़ न था, परन्तु यदि मैं रावण को मार डालता, तो राम की कीर्ति नष्ट हो जाती।'

आत्म-घात की परिभाषा

महाबली अर्जुन की यह प्रतिज्ञा थी कि जो मेरे गाण्डीव धनुष की निन्दा करेगा, मैं उसकी हत्या करके ही जल पीऊँगा। घर में सब लोगों को यह मालूम था, पर शोक का आवेग प्रबल होता है, युधिष्ठिर ही महाभारत-युद्ध में एक दिन कह बैठे कि धिक्कार है अर्जुन, तेरे गाण्डीव को, जो वह अभिमन्यु की रक्षा न कर सका।

अर्जुन ने कहा—"यह तो जो कुछ है, सो ठीक है, पर अब आप जीवित नहीं रह सकते और मैं आपकी हत्या करके ही जल पीऊँगा।

अर्जुन की बात सुनी, तो सब सन्न, क्योंकि सभी उसकी गंभीरता से परिचित थे। मामला बिगड़ता देख कर कृष्ण बीच में आ बैठे, और बोले—"ठीक है, तुम्हारी प्रतिज्ञा की पूर्ति होनी ही चाहिए, क्योंकि जिसकी प्रतिज्ञा अपूर्ण रहे, वह कैसा क्षत्रिय ?" आइए, धर्मराज, यहाँ बैठिए और अर्जुन को अपना काम करने दीजिए।

धर्मराज सामने आ बैठे। अब मामला और भी संगीन दिखाई दिया। पर, तभी नीति-शिरोमणि कृष्ण ने कहा—"अर्जुन तुम्हारी प्रतिज्ञा हत्या करने की है, सिर काटने की तो नहीं। और शास्त्रों में तो कहा है कि किसी के सामने सज्जन की कड़वे शब्दों में भर्त्सना करना भी हत्या है। तुम इसी रूप में धर्मराज की हत्या कर अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर सकते हो।"

प्रतिज्ञा पूरी हुई, लोगों का बोझ उतरा, पर तभी भीम ने एक नई फुलझड़ी छोड़ दी। उसने कहा—"हम सब भाइयों की प्रतिज्ञा है कि यदि हम भाइयों में से किसी एक की मृत्यु हो गई, तो बाकी भी आत्महत्या कर लेंगे। अब क्योंकि धर्मराज की मृत्यु होगई है, इसलिए हम सबको भी चितारोहण करना चाहिए।" वातावरण फिर ज्यों का त्यों गंभीर होगया। कृष्ण ने सोचकर कहा—"परिणाम कुछ भी हो, प्रतिज्ञा की पूर्ति तो होनी ही चाहिए, पर आपकी प्रतिज्ञा जीवन का अन्त करने की नहीं, आत्महत्या करने की है। शास्त्रों में अपनी प्रशंसा आप करने को आत्मघात ही माना है। आप लोग भी अपने गुणों का स्वयं बखान करके यह प्रतिज्ञा-पूर्ति करें।" सबने अपनी-अपनी डींग हाँकी और उठ खड़े हुए।

पैग़म्बर की दया

एक बार पैग़म्बर साहब खुदा की याद में मस्त थे। उन्हें देखकर पास ही काम करने वाला एक श्रद्धालु किसान उनके दर्शन के लिए वहाँ आया। बंदगी बजा लाने के बाद भेंट-स्वरूप उसने दो अंडे उनके सामने रक्खे। अंडों को देखकर पैग़म्बर साहब को बड़ी वेदना हुई। और वह उससे कहने लगे—

"तुझे ये कहाँ मिले ?"

"एक पेड़ के घोंसले में, साहब !"

"वहाँ इनकी माँ नहीं थी ?"

"थी साहब, नर-मादा दोनों ही थे ?"

"जब तूने अण्डे उठाए तो उन्होंने क्या किया ?"

"चें-चें कर रहे थे और चारों ओर चक्कर काट रहे थे।"

"तेरे कितने बच्चे हैं ?"

"जी साहब, मेरे तीन लड़के हैं।"

"तेरे पास से उन्हें कोई हटा ले जाए तो कैसा लगेगा ?"

"मुझे पीड़ा होगी साहब, मैं पीड़ा और शोक से बद-हवास हो जाऊँगा।"

"कोई उन्हें आराम से तेरे घर वापस पहुँचा दे तो ?"

"मुझे बड़ी खुशी होगी और मैं ईश्वर को धन्यवाद दूँगा।"

"ये अंडे अगर तू वापस पहुँचादे तो क्या होगा ?"

"पक्षियों को बड़ी खुशी होगी। वे आनन्द से नाच उठेंगे। ईश्वर के गुण गाएँगे।"

यह कह कर पैग़म्बर को सलाम करके वह उठा और अंडे जहाँ से लाया था वहाँ ले जाकर सुरक्षित रख दिए।

धर्म-ग्रन्थों की सचाई में से

प्रतिभा का चमत्कार

एक वार देवता-गण यह निश्चय करने बैठे कि हम में सर्वोच्च स्थान किस का है ? निर्णय हुआ कि जो सब से पहले ब्रह्माण्ड की सात परिक्रमाएँ कर आए, उसे ही देवताओं में प्रथम स्थान दिया जाय।

अब चल पड़े देवता परिक्रमाएँ लगाने के लिए। कोई गरुड़ पर चढ़ दौड़ा तो कोई मयूर पर ! परन्तु चूहे पर सवारी करने वाले भारी भरकम लंबोदर गणेशजी उदास होकर बैठे रहे क्यों कि उन के लिए तो कोई अवसर (मौक़ा) ही नहीं था।

फिर भी उन्होंने अपनी प्रतिभा का चमत्कार मालूम करने के लिए कुछ देर अपना सिर खुजलाया। बस फिर क्या था, प्रतिभा का स्रोत फूट पड़ा। गणेशजी की प्रसन्नता का पार न रहा। उन्होंने धीरे से भूमि पर 'राम' नाम लिखा और क्षण-भर में उसकी सात परिक्रमाएँ लगाकर बैठ गए।

निर्णायक पंचों को निर्णय देना पड़ा कि गणेशजी की विजय हुई है। अतः देवपूजा में सर्व प्रथम स्थान उन्हें ही मिलना चाहिए। क्यों कि उन्होंने सर्वव्यापक राम की परिक्रमा करके सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की परिक्रमा कर ली है।

श्रेष्ठतर प्रतिभा का यह सम्मान देवता-गण भला कभी भूल सकते हैं ?

तिब्बत-नरेश का राष्ट्र-प्रेम

दशवीं शताब्दी की बात है, अत्यन्त महान और अत्यन्त तेजस्वी तिब्बत के राजा जशीहोड् बड़े ही राष्ट्र-भक्त तथा संस्कृति-प्रेमी नरेश थे। वे अपने पिछड़े हुए देश का उद्धार चाहते थे, और इसके लिए मानवता के महान् कलाकार श्री आचार्य दीपंकर विज्ञान को भारत के विक्रमशिला विद्यापीठ से अपने देश मे बुलाना चाहते थे।

उन्होंने प्रतिज्ञा की कि 'आचार्य दीपंकर को बुलाकर उनके हाथों तिब्बत का उद्धार कराऊँगा, भले ही इसके लिए मुझे कुछ भी कष्ट उठाना पड़े।'

उक्त दृढ़ निश्चय के बाद, आचार्यजी को बुलाने के लिए विद्वानों का एक दल भारत भेजा, और स्वयं सोने की खोज मे निकल पड़े। क्योंकि तिब्बत के राज्यकोष में जितना सोना था, आचार्य दीपंकर के स्वागत में तथा उनके द्वारा होने वाले शिक्षा-प्रचार में, उससे अधिक सोना खर्च होने का अनुमान था।

उन दिनों नेपाल के समीप राजा गारलंग के राज्य मे सोने की एक खान निकली थी। तिब्बत नरेश उधर ही चल पड़े। गारलंग बौद्ध-धर्म का कट्टर दुश्मन था और साथ ही उसे तिब्बत नरेश से चिढ़ भी थी। अतः उसने धोखे से तिब्बत नरेश को बंदी बनाकर घोषणा की कि यदि मुझे जशीहोड् के बराबर सोना मिलेगा, तो मैं उन्हें मुक्त करूँगा, अन्यथा प्राण-दण्ड दूँगा।

इस पर तिब्बत-नरेश के बेटे और भतीजे जी-जान लगाकर स्वर्ण-संग्रह करने लगे, पर तिब्बत-नरेश को यह बात पसंद न आई। उन्होंने अपने बेटे और भतीजे को ऐसा करने से रोका और कहा—'मेरी मुक्ति के लिए जो स्वर्ण-संग्रह कर रहे हो, उसे आचार्य दीपंकर के स्वागतार्थ रख छोड़ो। मेरी मुक्ति के लिए तुम लोग चेष्टा मत करो, अन्यथा मुझे दुःख होगा। मेरे ग़रीब देश का सोना, इस तुच्छ देह की मुक्ति में खर्च न आकर सम्पूर्ण देश की अज्ञानता से मुक्ति में खर्च आना चाहिए।'

मृत्यु के कुछ काल पूर्व तिब्बत-नरेश ने अपने भतीजे से कहा था—"पुत्र, तुम रोना मत। यह बड़े सौभाग्य एवं आनन्द की बात है कि आज मैं धर्म और देश के नाम पर बलिदान हो रहा हूँ। ऐसा सुयोग बड़े सौभाग्यशाली को ही मिलता है। किन्तु मेरी अन्तिम अभिलाषा है कि तुम आचार्य दीपंकर को अवश्य बुलाना। उनके आने से तिब्बत में नई जागृति फैलेगी। आशा है, तुम मेरी यह अभिलाषा अवश्य पूरी करोगे।"

आचार्य दीपंकर साठ वर्ष की वृद्धावस्था में भी तिब्बत पहुँचे, तिब्बत नरेश के आत्मबलिदान ने उन्हें मुग्ध कर दिया था।

किसी भी समाज या राष्ट्र को सुसंस्कृत एवं सुशिक्षित बनाने के लिए तिब्बत-नरेश जैसे आत्मभोग देने वाले वीरों की आवश्यकता होती है।

संत तुलसीदास का वैराग्य

श्री गोस्वामी तुलसीदासजी, अपनी पत्नी रत्नावली के रूप, यौवन एवं स्नेह पर इतने आसक्त थे कि एक क्षण का विरह भी उन्हें कल्प-समान लगने लगता था। कई बार इनका साला बहन की विदा के लिए आया और निराश लौट गया।

एक बार वह ऐसे समय आ पहुँचा, जब गोस्वामीजी गृह-वस्तुएँ लेने को बाजार गए हुए थे। बस, रत्नावली उनसे बिना पूछे भाई के साथ पिता के घर चली गई। घर वापस आने पर गोस्वामीजी रत्नावली को घर में न देख अत्यन्त विकल हुए। पड़ौसियों से सब समाचार मालूम हुए तो उन्हीं कदमों से ससुराल की ओर चल पड़े।

रत्नावली पिता के घर पहुँची ही थी। अभी सबसे अच्छी तरह मिल-भेंट भी न पाई थी कि पति देव को घर में प्रवेश करते देख सहसा लज्जा से अवसन्न हो गई। क्रोधावेश में झुँझलाकर उसने कहा—"जैसा प्रेम आपको हाड़-माँस के मेरे इस नश्वर शरीर से है, वैसा प्रेम यदि भगवान राम के चरण-कमलों में होता तो क्या ही अच्छा होता, जन्म-मरण के सब बन्धन कट जाते। संसार में एक राम ही अविनाशी है, और सब कुछ नश्वर है।"

स्त्री के समयोपयोगी वातावरण ने तुलसी के मोहान्धकार को सहसा छिन्न-भिन्न कर दिया। वे साधना के पथ पर उल्टे लौट पड़े। सन्त तुलसीदास क्या थे, और अन्त में क्या होगए। एक छोटे-से निमित्त ने जीवन की दिशा ही पलट दी।

प्रभु-सेवक कौन ?

भक्त आवूबन अपने युग के बड़े ही सहृदय और सच्चे पुरुष थे। वे सब को समान दृष्टि से देखते और सब की सेवा का सस्नेह लाभ लेते। एक दिन की बात है कि रात को सोते हुए आधी रात के समय जब एकाएक उनकी आँखे खुलीं तो उन्होंने देखा कि सारा घर प्रकाश से जगमगा रहा है और एक देवदूत सुनहरी पुस्तक में कुछ लिख रहा है।

"आप इस पुस्तक में क्या लिख रहे हैं ?"–आवूबन ने पूछा।

"जो लोग ईश्वर को हृदय से प्यार करते हैं, मैं, उन लोगों के नाम इस पुस्तक में लिखता हूँ।"—देवदूत ने धीरे से उत्तर दिया।

"क्या मेरा नाम भी लिखा है ?"

"नहीं।"

"नहीं लिखा तो कोई हर्ज नहीं। परन्तु इतना लिख लीजिए कि—आवूबन सब मनुष्यों को हृदय से प्यार करता है।"

यह सुनकर देवदूत अदृश्य हो गया। अगली रात को जब वह पुनः लौट कर आया और वह पुस्तक आवूबन की आँखों के सामने की तो आवूबन ने देखा—जितने भी ईश्वर-भक्तों के नाम उस पुस्तक में लिखे थे, उनमें सबसे पहले आवूबन का ही नाम लिखा था।

उक्त कथा का संदेश है—"जन-सेवक ही सच्चा प्रभु-सेवक है। जनता से प्यार किए विना प्रभु का प्यार नहीं मिलता।

लक्ष्मी ने पति चुना

भागवत में समुद्र-मन्थन की बड़ी रोचक कथा है। देवों और असुरों ने मिलकर जब अमृत के लिए समुद्र-मन्थन किया तो पहले-पहल समुद्र में से -विष निकला, जिसके कारण सब के सब भय से संत्रस्त हो उठे। परन्तु दयालु शंकर ने वह सब हलाहल पी लिया, फलतः सब प्रजा की रक्षा हो सकी। इसके बाद कामधेनु गाय निकली, फिर उच्चैःश्रवा घोड़ा निकला। फिर ऐरावत हाथी आया। फिर कौस्तुभमणि निकली। और लक्ष्मी का आविर्भाव भी इसी शुभ प्रसंग पर हुआ।

लक्ष्मी से विवाह करने के लिए सब के सब देवता और असुर आतुर हो उठे। जब सब ने अपने-अपने विवाह-प्रस्ताव उपस्थित किये तो लक्ष्मी ने विचार किया कि मैं किसे वरण करूँ? मुझे तो सर्वथा निर्दोष गुण और शील वाला वर चाहिये। दुर्वासा जैसे तपस्वी में क्रोध है, इसलिये वह मेरे योग्य नहीं। बृहस्पति ज्ञानी है, तो अनासक्त नहीं। ब्रह्मा महान है, पर उसने काम पर विजय नहीं प्राप्त की। इन्द्र ऐश्वर्यशाली तो है, पर उसका ऐश्वर्य दूसरों के आश्रय पर है। परशुराम धार्मिक है, पर प्रेम से रहित है। शिवि में त्याग है, पर अन्य गुण उसमें नहीं। कार्तवीर्य वीर है, पर मृत्यु से त्रस्त है। सनकादि ऋषि अनासक्त है, पर अकर्मण्य है। मार्कण्डेय की आयु लम्बी है, पर वह शील रहित है। दूसरी ओर कुछ लोग शीलवान हैं तो दीर्घायु नहीं। शंकर में सब गुण हैं, पर उनकी वेषभूषा मंगल-

मय नहीं। विष्णु में सब गुण हैं और वेषभूषा भी मंगलमय है, पर उन्हें मेरी क्या गरज पड़ी है ? अन्त में विष्णु की इस निस्पृहता ने लक्ष्मी को आकर्षित किया और उन्हीं के उसने वरमाला डाली।

धन की प्रतीक लक्ष्मी ने अपने लिए स्वामी चुनने में जिस विवेक का परिचय दिया, वह प्रत्येक धनेच्छुक के लिए एक शिक्षा-प्रद पाठ है।

गालियाँ किसकी ?

एक दिन एक अभद्र युवक जान-बूझ कर महात्मा बुद्ध को गन्दी-गन्दी गालियाँ सुनाने लगा। बुद्ध शाँत भाव से सब कुछ सुनते और सहते रहे। अन्त में वह जब थक गया, तो वे स्नेह पूर्वक बोले—"वत्स, यह बताओ कि यदि कोई व्यक्ति किसी की भेंट को स्वीकार न करे तो वह वस्तु किस की मानी जायगी।'

उस युवक ने उत्तर दिया—'जिस की थी, उसी की। तब भगवान ने पुनः कहा—"तुम अपने अपशब्दों का कोप अपने ही पास रखो। मुझे उस की आवश्यकता नहीं है। प्रतिध्वनि जिस प्रकार ध्वनि का अनुगमन करती है, और छाया पदार्थ के साथ चलती है, उसी प्रकार दुःख अपराधी के साथ लगा रहता है, जिसका अन्तःकरण पवित्र है, उसको तुम दुर्वचनों से दूषित नहीं बना सकते।

असाधु का वाणी बाण निष्फल हो गया। महात्मा की साधुता और शिक्षा से प्रभावित होकर उस ने उनके आगे अपना सिर झुका दिया।

वासवदत्ता

वासवदत्ता (एक वेश्या) का सौंदर्य पूर्ण चन्द्र से भी अधिक पूर्ण था। उसकी देह कमल से भी अधिक कोमल थी। उस की वाणी वीणा का तिरस्कार करती थी। स्वर्ग की अप्सराएं एक बार उसके सामने हतप्रभ हो जाती थीं।

एक बौद्ध श्रमण वासवदत्ता की सुविशाल अट्टालिका के द्वार पर भिक्षा के लिये आ खड़ा हुआ। वासवदत्ता की दृष्टि उस युवक भिक्षु पर पड़ी तो उसने उसे एक बार देखा, सौ बार देखा, बस देखती ही रही।

भिक्षु उपगुप्त दुनिया की नजर मे एक भिखारी था, किन्तु अन्तर्जगत् की आध्यात्मिक दृष्टि से वह राज-राजेश्वर था। मन से बढ़ कर श्रेष्ठ और सुविस्तृत राज्य कोई नहीं है। उपगुप्त ने अपने उसी मन के ऊपर विजय प्राप्त की थी। वह राज-राजेश्वर था और समस्त इन्द्रियाँ उसकी प्रजा थीं। उसकी आँखें अचंचल और शान्त थीं। एक दिव्य तेजोमयी स्वर्गीय आभा से उसका प्रशान्त मुख-मण्डल भासमान था।

वासवदत्ता ने वाणी में स्नेह-सुधा घोलते हुए कहा—"भिक्षु! भिक्षा-पात्र आगे बढ़ाओ। मैं तुम्हें भिक्षा मे अपने हृदय का दान करूँगी।"

उपगुप्त ने पूछा—"इसका क्या अर्थ ?"

वासवदत्ता ने उत्तर मे कहा—"इसका अर्थ यही है कि यह तुम्हारी सुकुमार देह भिक्षा-वृत्ति के लिए नहीं है। यह

अनुपम सौन्दर्य-सुमन संसार-सुख के स्पर्श से सर्वथा दूर संयम यंत्रणा के वनपथ में मुरझाने के लिए नहीं हैं। आओ, भिक्षु! मेरे स्वर्ग-सदन में आओ। मैं विश्व की स्वामिनी, आज तुम्हारी दासी बनूँगी।"

उपगुप्त के वासना-प्रभाव से मुक्त मुख-मण्डल पर हँसी की एक हलकी-सी प्रसन्न रेखा दिखलाई दी। वह कुछ क्षण मौन रह कर बोला—"अभी तो समय नहीं है। हाँ, फिर किसी दिन उपयुक्त समय पर आऊँगा" उपगुप्त द्रुत गति से संघाराम की ओर चला गया।

× × × ×

आज वासवदत्ता को किसी धनिक प्रेमी की हत्या में प्राण-दण्ड तो नहीं, परन्तु कुरूप करने का कठोर दण्ड मिला है। उसके चन्द्र वदन की आँखें निकाल ली गईं, नाक-कान काट दिए गए। उसकी मृणाल-सी कोमल भुजाएँ छिन्न-भिन्न कर दी गईं। उसकी धन-संपत्ति सब छीन ली गई। राजा की आज्ञा से जल्लाद ने वासवदत्ता को कुरूप और कुत्सित कर राज-पथ में छोड़ दिया। एक मनुष्य फूटा ढोल बजाता हुआ उसके साथ था, जो उच्चं स्वर से समस्त प्रजा को उसके पाप की कथा सुनाता था।

कितना भयानक और वीभत्स दृश्य था वह। उसके क्षतों से रक्त और पीव वह रहा था, जिस पर मक्खियाँ भिन-भिना रहीं थीं, हाथों से हीन होने के कारण अभागिनी उनको उड़ा भी नहीं सकती थी। आज उसकी सुन्दरता के प्रेमी उससे घृणा कर रहे थे, दूर ही से देखकर भाग रहे थे। सब लोग उस पर थूक रहे थे। पथ का एक भिक्षुक, लूला-लंगड़ा, कुष्ट

रोगी भी उसके स्पर्श से बचने का प्रयत्न कर रहा था। वह एक स्थान पर मूर्छित होकर गिर पड़ी।

इसी समय उसके मस्तक पर एक दया से भरा हाथ रक्खा गया, चन्दन-सा शीतल। वासवदत्ता ने मूर्छा-भंग होने पर पूछा—"कौन है?" उत्तर मिला—"मैं उपगुप्त हूँ।" वासवदत्ता ने दीर्घ श्वास छोड़ कर कहा—"लौट जाओ, तुम अब किस लिए आए? मेरे पास अब तुम्हारे लिए क्या रहा है? क्या तुम मेरा उपहास करने आए हो?"

उपगुप्त ने दया-स्निग्ध स्वर में कहा—"बहन! शान्ति रक्खो, धैर्य धारण करो। मैंने तुमसे कहा था—'अभी समय नहीं है, फिर कभी आऊँगा।' सो, अब मैं अपने ठीक समय पर आ पहुँचा हूँ। देखो, बहन! संसार का यह सब रूप, धन, ऐश्वर्य, भोग क्षण-भंगुर है। इसका क्या हर्ष और क्या शोक? अनन्त आत्म-सौन्दर्य की साधना के लिए तैयार हो जाओ। मैं तुम्हें शान्ति के राज्य में ले जाने के लिए आया हूँ।"

भिक्षु उपगुप्त वासवदत्ता को अपने आश्रम में ले गया। उसकी मन लगाकर परिचर्या की, सेवा की। पाप-ताप से दग्ध वासवदत्ता ने पश्चात्ताप और प्रायश्चित्त की गंगा में स्नान किया, प्रव्रज्या ग्रहण की, और अपने शेष जीवन में शान्ति-लाभ प्राप्त किया।



मर कर भी अमर

भारतीय इतिहास की यह हजारों वर्ष पहले की घटना है। द्वारका का वैभव समाप्त हो चुका था, यादव जाति विलासिता की आग में जल चुकी थी। जीवन-भर जन-सेवा के क्षेत्र में सतत उद्योग करते-करते श्री कृष्ण भी जीवन के किनारे पर पहुँच रहे थे।

इसी समय की बात है कि श्री कृष्ण थके हुए जंगल में किसी पेड़ के सहारे पैर पर पैर रख कर लेटने की मुद्रा में आराम कर रहे थे। इतने में एक व्याध यानी शिकारी, उस जंगल में आ पहुँचा। रात्रि का समय था, कुछ-कुछ अंधेरा हो चला था। अतः उसे लगा कि कोई हिरन पेड़ के सहारे बैठा है। शिकारी जो ठहरा, बस उसने लक्ष्य साध कर तीर छोड़ ही तो दिया।

तीर श्री कृष्ण के पाँव में लगा, खून की धारा बहने लगी। शिकारी अपना शिकार पकड़ने के इरादे से नजदीक आया। परन्तु सामने प्रत्यक्ष नरश्रेष्ठ को जख्मी पाया तो उसे बड़ा दुःख हुआ। अपने हाथों से इतना बड़ा पाप हुआ, यह सोचकर वह रोने लगा।

श्री कृष्ण थोड़े ही समय में संसार से चल बसे। परन्तु मरने से पहले उस व्याध से कहा—"हे व्याध! डरना नहीं। मृत्यु के लिये कुछ न कुछ निमित्त लगता ही है। बस, मेरी मृत्यु के लिये तू निमित्त बन गया"। ऐसा कह कर श्रीकृष्ण ने उसे आशीर्वाद दिया।

क्या ऐसी स्थिति में इतना धैर्य रखा जा सकता है? हाँ जो रख सकता है, वही महा पुरुष होता है।

अपने पैरों पर

एक बार की बात है कि स्वर्ग का राजा इन्द्र भगवान् महावीर की सेवा में उपस्थित हुआ। महा श्रमण महावीर उन दिनों भगवान् न हुए थे, अनन्त सत्य की शोध में कठोर साधना कर रहे थे।

इन्द्र ने हाथ जोड़कर प्रभु-चरणों में प्रार्थना की—"प्रभु! अज्ञानी लोग आप को समझ नहीं पा रहे हैं। वे आपको समझने में कभी-कभी बड़ी भयंकर भूल करते हैं। यही कारण है कि आप को प्रायः हर स्थान पर कुछ-न-कुछ अपमान, तिरस्कार और ताड़न, तर्जन सहना पड़ता है। अतः आज्ञा दीजिए, सेवक निरन्तर आप की सेवा में रहेगा और यथावसर इस प्रकार की अभद्र घटनाओं का उचित प्रतिकार करेगा।"

भगवान् महावीर ने कहा—"वत्स! मुझे अपने पैरों चलने दो। साधना का मार्ग अपने पैरों से ही तय किया जा सकता है, दूसरे पैरों से नहीं। यदि कुछ सेवा करने की कामना है तो उन की सेवा करो, जो सेवा चाहते हैं। मुझे सेवा की आवश्यकता नहीं है।

———

ज्ञान अनन्त है

कृष्ण यजुर्वेद के तैत्तिरीय ब्राह्मण में कहा गया है कि ऋषि भरद्वाज ने जीवन-भर तपस्या की। प्रसन्न होकर इन्द्र प्रकट हुए और भरद्वाज से पूछा—"यदि तुम्हें एक जन्म और मिले, तो तुम उस जन्म में क्या करोगे ?"

भरद्वाज ने उत्तर दिया—"मैं इस जन्म के समान ही तपस्या करता हुआ उस जन्म में भी वेदाध्ययन करूँगा।"

देवाधिपति इन्द्र ने पुनः प्रश्न किया—"यदि तुम्हें पुनः एक जन्म और मिले. तो क्या करोगे ?"

भरद्वाज ने इस बार भी दृढ़ता पूर्वक उत्तर दिया—"मैं उस जन्म में भी तप करता हुआ वेदों का स्वाध्याय करूँगा।"

इस उत्तर के साथ ही भरद्वाज के सामने तीन पर्वत प्रकट हुए। इन्द्र ने उन तीनों में से एक मुट्ठी-भर कर कहा—"भरद्वाज ! अब तक वेदों को पढ़ कर जो कुछ ज्ञान तुमने प्राप्त किया है और दूसरे जन्मों में भी जो कुछ ज्ञान पाओगे, वह सब इन पर्वतों की तुलना में मुट्ठी के समान है। वेद तो अनन्त हैं। "अनन्ता वै वेदाः।'

यह कहानी सत्य-ज्ञान की अनंतता पर कितना सुन्दर प्रकाश डालती है ?

द्रौपदी का मातृहृदय

कुरुक्षेत्र के मैदान में लड़ा जाने वाला महाभारत का युद्ध समाप्त हो चुका था। दुर्योधन भीम के द्वारा आहत हो कर जीवन की अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा था। पाण्डव शिविर में बहुत रात गए तक विजयोत्सव मनाये जाने के बाद सब के सब छोटे-बड़े सोये पड़े थे। इसी समय मध्यरात्रि में अश्वत्थामा ने आक्रमण किया और द्रौपदी के पाँचों पुत्रों को मौत के घाट उतार कर भाग खड़ा हुआ।

विजय हार में बदल गई। उल्लास ने रुदन का रूप ले लिया। सब ओर हाहाकार की दारुण पुकार पृथ्वी तथा आकाश के टुकड़े-टुकड़े करने लगी। द्रौपदी की अन्तर्वेदना की तो कुछ सीमा ही न थी। वह तो बार-बार मूर्छित हो होकर भूतल पर मछली के समान छटपटा रही थी।

भीम और अर्जुन दौड़े। भागते हुए अश्वत्थामा को सूने जंगल में से पकड़ लाए। श्री कृष्ण ने द्रौपदी से कहा—"यह रहा, तुम्हारा अपराधी! बताओ, तुम इसे क्या दण्ड देना चाहती हो। अर्जुन की तलवार एक ही झटके में इसके सिर और धड़ का दो टूक फैसला करने के लिए तैयार है।"

द्रौपदी ने रोते-रोते कहा—"प्रभु! इसे छोड़ दो। मारो मत। पुत्र-शोक बड़ा भयंकर होता है, नाथ! मैं तो रो ही रही हूँ। व्यर्थ ही इसकी बुढ़िया माँ को भी क्यों रुलाते हो?"

अश्वत्थामा छोड़ दिया गया और, कृष्ण ने कहा—"द्रौपदी! सच्ची विजय तू ने प्राप्त की है। तू ने वह किया है, जो हम नहीं कर सके। तू ने मातृहृदय को खूब परखा। तेरा काँटों में छिपा फूल-सा कोमल दयालु हृदय प्रतिहिंसा के कुहासे से घिरे विश्व को करुणा का अजर-अमर प्रकाश देगा।"

क्षमा की विजय

एक रात महर्षि विश्वामित्र ने सोचा—"वशिष्ठ मुझ से शत्रुता रखता है। वह मुझे हर बात में नीचा दिखाना चाहता है। जब तक वह रहेगा, मेरी प्रतिष्ठा नहीं बढ़ सकती। क्योंकि वह तप में मेरे से बहुत आगे बढ़ा हुआ है।"

यह क्या सोचा, क्रोध की ज्वाला मन के कण-कण में भड़क उठी। हाथ में खड्ग लिया, और वशिष्ठजी की कुटिया के पीछे दुबकी लगा कर खड़े हो गए। अब एक मात्र यही प्रतीक्षा थी कि—"वशिष्ठजी कब कुटिया से बाहर आएँ कि मारूँ।"

उधर अरुन्धती वशिष्ठजी से वार्तालाप कर रही थी। अरुन्धती ने कहा—"यह पूर्ण चन्द्र की चाँदनी जैसी उज्ज्वल और मन को आह्लाद करने वाली है, काश, ऐसी ही किसी मनुष्य की कीर्ति होती?"

वशिष्ठजी ने कहा—"हाँ, आज कल तो विश्वामित्र-जी की कीर्ति ही ऐसी है। उन जैसा सदाचारी, यशस्वी संत आज दूसरा कौन है? कोई भी तो नहीं।"

यह सुनना था कि विश्वामित्रजी तो पानी-पानी हो गए। उन्हें क्या पता था कि जिसे वे अपना शत्रु समझते हैं, प्रतिष्ठा प्राप्ति में बीच का रोड़ा समझते हैं, वह परोक्ष में उनकी कितने सरल भाव से कितनी बड़ी प्रशंसा कर रहा है?

परोक्षप्रशंसा ने विश्वामित्र के हृदय को पिघला दिया। वे तलवार को फैंक कर महर्षि वशिष्ठ के चरण कमलों में आ गिरे।

अंबपाली का निमंत्रण

एक बार तथागत बुद्ध विहार-चर्या करते हुए वैशाली पहुँचे और वहाँ की सुप्रसिद्ध वेश्या आम्रपाली (अंबपाली) के आम्रवन में विराजे। जब अंबपाली ने यह समाचार सुना तो वह आनन्द-विभोर होगई, उसके हृदय के कण-कण में हर्ष का अमृत रस छलकने लगा।

वह रत्न-जटित स्वर्ण-रथ पर सवार होकर तुरन्त ही भगवान् के दर्शन करने चली। दासियों का पैदल झुंड उसके पीछे था। उसके पीछे अश्वारोही दल, और उसके बाद हाथियों पर भगवान् तथा श्रमण-संघ की पूजा-सामग्री। सबके पीछे बहुत-से वाहन, कर्मचारी और पौर गण।

आज अंबपाली एक साधारण पीत वर्ण का परिधान धारण किए शान्त भाव से बैठी है। एक भी आभूषण उसके शरीर पर नहीं है। आज उसके आसपास वासना नहीं, अपितु वैराग्य-भावना मँडला रही है। ज्यों ही आम्रवन के पास पहुँची, त्यों ही उसने सवारी रोकने की आज्ञा दी और पैदल ही भगवान् के चरणों तक पहुँची।

तथागत बुद्ध पद्मासन से शान्त मुद्रा में एक सघन वृक्ष की छाया में बैठे थे। हजारों शिष्य, सामने दूर तक बैठे हुए, भगवान् के श्री मुख से निकले प्रत्येक शब्द को हृदय-पटल पर अंकित कर रहे थे। आनन्द ने निवेदन किया—"भन्ते! अंबपाली दर्शनार्थ आई है।" तथागत ने मृदु हास्य के साथ

अपने करुणामृतवर्षी नेत्र ऊपर उठाए। अंवपाली ने भूमि पर नतमस्तक होकर वन्दना की। भगवान् का उपदेश श्रवण करने के पश्चात् उसने उनसे अगले दिन के भोजन की प्रार्थना की—"भगवन्! इस अपदार्थ का आतिथ्य स्वीकार हो। इन चरण कमलों की देवदुर्लभ रज-कण तुच्छ दासी की कुटिया को भी प्रदान हो।"

अंवपाली की प्रार्थना स्वीकार कर ली गई। इतने में ही लिच्छिवि राजकुमारों ने भगवान् की पदधूलि अपने स्वर्ण मुकुटों पर लगाते हुए कहा—"महाप्रभु! हमारी तुच्छ राजधानी इन चरणों के पधारने से कृतकृत्य हुई। किन्तु भगवान्! यह वेश्या की बाड़ी है, श्री चरणों के योग्य नहीं। प्रभु के लिए राज-महल प्रस्तुत है और वहां हम सब आपकी सेवा के लिए हृदय से उत्सुक हैं। भगवान् ने हँस कर कहा—"तथागत के लिए वेश्या और राजा में क्या अन्तर है? तथागत समदृष्टि है।"

धर्मोपदेश श्रवण करने के वाद जन-समूह वैशाली की ओर लौट रहा है। आज आम्रपाली के हर्ष की सीमा नहीं है। वह आनन्द के अतिरेक में विना कुछ देखे-सुने अपना रथ वैशाली के राज-पथ पर भगाये जा रही है।

लिच्छिवि राजकुमारों ने आश्चर्य से पूछा—"अंवपाली! यह क्या बात है? तू आज हम लिच्छिवियों के वरावर अपना रथ कैसे हाँक रही है?"

उसने उत्तर दिया—"आर्यपुत्रो! मैंने भगवान् बुद्ध को संघसहित कल के भोजन का निमंत्रण दिया है, जो सस्नेह स्वीकार कर लिया गया है।"

"अंबपाली! हम तुझे सौ हजार (एक लाख) स्वर्ण-मुद्रा देंगे, तू भगवान् का कल का भोजन हमारे यहाँ होने दे।"

"आर्यपुत्रो! यह नहीं हो सकता।"

"अच्छा तो तू सौ गाँव ले ले, और यह निमंत्रण हमें दे-दे।"

"आर्यपुत्रो! यह सर्वथा असंभव है।'

"आधा राज्य ले और यह निमंत्रण हमें बेच दे।"

"आर्यपुत्रो! आप एक तुच्छ भूखण्ड के स्वामी हैं। पर यदि आप समस्त भूमण्डल के चक्रवर्ती भी होते और यदि वह अपना समस्त साम्राज्य भी मुझे देते, तो भी मैं इस निमंत्रण को तुम्हें नहीं बेच सकती थी। यह निमंत्रण बेचने या अदला-बदली करने की चीज नहीं है।"

राजकुमार हतप्रभ एवं पराजित हो गए।

यह था अंबपाली का साधनापूत अनाविल जीवन तथा बुद्ध के प्रति अनुपम श्रद्धा भाव। भोजन के अनन्तर उसने अपने उपवन को भी बुद्ध-संघ के लिए समर्पित कर दिया और अन्त में वह स्वयं भी अपने काम-भोग में अनुरक्त जीवन से विरक्त हो भिक्षुणी हो गई।

चलती चक्की

सन्त कबीर अपने यौवन के मध्यकाल में सद्गुरु के पास रह रहे थे और आत्म-ज्ञान का रहस्य पाने के लिए प्रयत्न कर रहे थे। संसार की मोह-माया से उदासीन, अपने-आप में सिमटे हुए!

एक बार उन्होंने देखा कि चक्की चल रही है और जो भी गेहूँ के दाने उसमें डाले जाते हैं, सब पिस कर आटा बनते जाते हैं, कोई भी तो अखण्ड नहीं रह पाता। कबीर का मुँह उदास हो गया, आँखें सजल हो उठीं!

अन्तर्मन में चिन्तन की एक तूफ़ानी लहर उठ खड़ी हुई—"संसार की चक्की का चक्र भी कितनी तीव्र गति से घूम रहा है। बेचारे अबोध प्राणी किस बुरी तरह दले जा रहे हैं। यहाँ कौन ऐसा अछूता है, जो मौत की चक्की में पिस जाने से बचा रह सकता हो? कोई नहीं!"

पास खड़े गुरुदेव को स्थिति समझने में देर नहीं लगी। कहा जाता है—गुरुदेव ने चक्की के पाट को जरा ऊपर हटाया और कीले के पास अखण्ड रह जाने वाले गेहूँ के दानों को दिखा कर कहा—"संसार का या मौत का चक्र चल रहा है तो भले चले, हमें क्या डर है? जो सत्य प्रभु के अमर केन्द्र में स्थित है, उसे दुनिया की कोई भी ताक़त पीस नहीं सकती!"

आधा हाथ काट डालो

एक बाउल भक्त दरजी के पास मठ के महन्त कुरता सिलाने के लिए आए। दरजी ने नापा ले लिया और कुरता सीने लगा। वह अपनी धुन में मस्त था, ऐसा हुआ कि कुरते की एक बाँह आध हाथ के करीब छोटी रह गई!

महन्त ने यह देखा तो बिगड़ पड़े। "नालायक! यह क्या किया? बता, यह कुरता अब कैसे फिट हो?"

दरजी ने कहा—"क्या हो गया? फिट होने की कौनसी बात है—अपना आधा हाथ काट डालो।"

अब तो महन्तजी का पारा और भी ऊँची डिग्री पर चढ़ गया। "तू पागल तो नहीं है? कुरते की अधूरी बाँह फिट होने के लिए क्या मैं अपना हाथ काट डालूँ?"

दरजी ने धर्मगुरु की आँखें खोलते हुए कहा—"और आप करते ही क्या हैं? शिष्यों को सदा ही बली क्रियाकाण्ड रूप सामयिक धर्म में फिट करने के लिए आत्मा के अखंड शाश्वत धर्म को ध्वस्त करने का उपदेश देते रहते हो, क्या यह पागलपन नहीं है?" हाथ काटने से तो एक जन्म का शरीर ही खण्डित होता है। परन्तु सामयिक धर्म के लिए अखण्ड धर्म की काट-छाँट करने से चिरन्तन सत्य का नाश हो जाता है।

0155.3

3009

अज्ञानी को ज्ञान से जीतो

गुरु नानक का वचन है—"अन्तर तीरथ ज्ञानका, 'सोधता नाहीं मूढ़ ।" अर्थात् मूढ़ लोग बाहरी तीर्थों को महत्त्व देते हैं, अपने हृदय के असली तीर्थ को नहीं खोजते। एक बार उन्हें ऐसे ही मूढ़ों का सामना करना पड़ा। देशाटन करते हुए वे मक्का शरीफ़ पहुँचे और काबे के सामने थक कर विश्राम करने के लिए लेट गए। संयोग से उनके पैर काबे की ओर थे। उसी समय वहाँ कुछ अन्ध भक्त लोग आए। उन्होंने गुरु नानक को ठोकरों से जगाकर कहा—' काफ़िर. तू पवित्र स्थान का अपमान करता है, खुदा के घर के सामने पैर फैलाता है ?" उनके दुर्व्यवहार से ज्ञानी गुरु नानक तनक भी अशान्त या भयभीत नहीं हुए। उन्होंने लेटे ही लेटे कहा—"भाई, नाराज़ मत हो। जिधर परमेश्वर न हो, तुम लोग उसी ओर मेरे पैर कर दो। मुझे उसमें कोई आपत्ति नहीं होगी।"

गुरु नानक के तर्क से अज्ञानियों का जोश ठण्डा हो गया। तब उन्हें होश आया और उन्होंने अतिथि का यथायोग्य सत्कार किया।

———

अतीत की गहराई में से

विरोधी पर विजय कैसे ?

एक बार सम्राट् कुमार पाल की राज-सभा में बड़े-बड़े विद्वान् यथास्थान सिंहासनों पर बैठे हुए थे और एक गंभीर दार्शनिक चर्चा चल रही थी। इतने मे आचार्य हेमचन्द्र भी चर्चा में भाग लेने के लिये उपस्थित हुए।

आचार्यजी को आते देख कर एक ईर्ष्यालु पण्डित ने मजाक उड़ाते हुए कहा—अच्छा हेम ग्वाला भी कंधे पर कमली और हाथ मे दण्ड लिए आगया।

"आगतो हेमगोपालो दण्ड कम्बल मुद्वहन्।"

आचार्य हेमचन्द्र बड़ी ही गंभीर प्रकृति के सन्त थे। भरी सभा में अपमान होने पर उत्तेजित न हुए। उन्होंने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—आपने ठीक कहा है। अनेकान्तवादी जैन दर्शन के विराट मार्ग मे एकान्तवादी षड्दर्शन रूप पशुओं को चराने वाला मे ग्वाला ही तो हूँ, इसमे असत्य क्या है ?

"षड्-दर्शन-पशु ग्रामां श्चारयन् जैनवाटके।"

एक मधुर मुस्कराहट के साथ की गई गहरी चोटने विरोधी को चरणों म ला गिराया। सारी सभा मे आचार्यजी का जय-जयकार गूंज उठा।

जो मिले उसी से सीखिए

मनु बहन गांधीजी से गीता पढ़ती थी। परन्तु उसका उच्चारण अशुद्ध रहता था। गांधीजी ने पूछा—उच्चारण इतना अशुद्ध क्यों रहता है ? मनु बहन ने झिझकते स्वर में उत्तर दिया—और विषयों में भले हजारों गुरु हों. लेकिन गीता का गुरु आप के सिवा दूसरा न हो। इसलिये मैं अपने आप ही सच्चे-झूठे उच्चारण और अर्थ करती रहती हूँ। दूसरे किसी की मदद लेकर आगे नहीं बढ़ी।"

इस बात से गांधीजी को बहुत दुःख हुआ। वे कहने लगे। "तुम्हारी इस इच्छा में झूठा मोह छिपा है। अच्छी चीज सीखने में हजारों क्या लाखों गुरु भी हम क्यों न करें ? अच्छी बात को एक छोटे बच्चे के पास से भी हम क्यों न सीखें ? अच्छी चीज सीखने में लज्जा कैसी ? किसी बड़े से अच्छी बात सीखने की प्रतीक्षा में पास के किसी दूसरे साथी से कुछ न सीखना भी एक प्रकार का पाप है।

चरखे का संगीत

एक बार रात को रेडियो पर बहुत ही सुन्दर कार्यक्रम आने वाला था। सब लोग सुनने की उत्कंठा में थे। गांधीजी की पोती मनु बहन ने आग्रह करते हुए कहा—'बापू, आज तो आप भी रेडियो का कार्य-क्रम सुनिए।'

बापू ने कहा—'उसमे क्या सुनना ? इन रेडियो के भजनों को सुनने की अपेक्षा तो हम अपने चरखे का संगीत ही क्यों न सुनें ?'

चार मुए तो क्या हुआ, जीवित कई हज़ार

सिक्ख-पंथ के दशम गुरु गोविन्दसिंह जी के चार पुत्र थे। उनके दो बड़े पुत्र चमकोर के युद्ध में लड़ते हुए मारे गए। और दो छोटे पुत्र, पकड़े जाकर सरहिन्द में मुसलमानों द्वारा दीवार में चुन दिये गए। उन्हें मुसलमान बन जाने को कहा, किन्तु वे अपने धर्म पर दृढ़ रहे और हंसते-हंसते धर्म पर बलिदान हो गए।

गुरु गोविन्दसिंह फिर भी निराश न हुए। उनके हृदय में अब भी धर्म रक्षा के लिए बलिदान होने की तरंगें उठ रही थीं। जब वे घर पर आए, तो बच्चों की माता ने रोते हुए पूछा—'मेरे पुत्र कहाँ हैं? आप उन्हें कहाँ मौत के मुंह में डाल आए?' इस पर गुरु गोविंदसिंह ने गंभीर भाव से जो उत्तर दिया, वह देश भक्ति के क्षेत्र में अपना सानी नहीं रखता। उन्होंने कहा :—

"इस भारत के सीस पर, चारों दीने वार;
चार मुए तो क्या हुआ, जीवित कई हज़ार।"

....मैं भी सो सकता हूँ

पण्डित जवाहरलाल नेहरू, सन् १६२१ में, गांवों का एक लंबा राष्ट्रीय भ्रमण कर रहे थे। जहाँ भी जाते, जनता के जीवन में एकाकार हो जाते थे। उसी समय की बात है कि—नेहरू जी एक छोटे से गाँव में, एक किसान के अतिथि हुए। भोजन के लिए मिली मकई की रूखी रोटी और साग। नेहरू जी ने वही बड़े आनन्द से खाया।

रात को सोते समय प्रश्न हुआ—अब सोने का क्या इन्तजाम है ? किसान बेचारा घर में से एक खाट उठा लाया। प्रश्न हुआ—"इस पर कौन सोता है ?"

"बहू सोती है।"

"आज वह किस पर सोएगी ?"

"स्त्री है, जमीन पर सो रहेगी।"

"(तमक कर) वाह ! स्त्री जमीन पर सो सकती है, तो मैं भी सो सकता हूँ।"

तय कर लेने के बाद जवाहरलालजी के कदम उठने में क्या देर ? किसान के बरामदे में क तरफ पयाल बिछा हुआ था, उसी पर ओवरकोट बिछाकर और एक कंबल, जो मोटर में साथ आया था, ओढ़ कर आप सो गए। किसान के दुःख-सुख में शरीक होकर जवाहरलालजी ने तो जैसे उस के घर पर कब्ज़ा ही कर लिया था। इतने बड़े मेहमान की ऐसी सादगी देखकर उस रात गाँव के किसानों के घर-घर से यही चर्चा रही।

चतुर मंत्री

गुर्जर नरेश भीमदेव का सन्धि-वैग्रहिक राजदूत मंत्री डामर बड़ा ही बुद्धिमान व्यक्ति था। एक बार भीम ने उसे मालव-मण्डलाधिपति भोज के पास किसी विशेष कार्य सिद्धि के लिए भेजना चाहा, और उस सम्बन्ध मे अपनी ओर से बहुत देर तक लम्बे-चौडे परामर्श देता रहा। वार्तालाप के अन्त में डामर वस्त्र झाड़ कर खड़ा हो गया। भीम ने पूछा—"यह क्या ?" डामर ने उत्तर दिया—"आपका सिखाया हुआ सब कुछ यहीं झाड़ जाता हूँ, क्यों कि वहाँ जाकर तो मुझे स्वयं ही अवसरोचित बोलना होगा।"

डामर के इस कथन मे भीम को अहङ्कार की गन्ध आई। अत. उसने उसकी बुद्धि की परीक्षा के लिए प्रच्छन्न भाव से राख मंगाकर सोने के डिब्बे में बन्द की, और वह डिब्बा डामर को देकर कहा कि—"यह भेंट ज्यों की त्यों भोज को दे देना।"

डामर ने सभा मे जाकर वह भेंट राजा भोज को अर्पण की। भोज ने ज्यों ही डिब्बा खोला तो उसे राख से भरा पाया। भोज ने क्रोध की मुद्रा मे कहा—"अरे यह कैसी भेंट ?" चतुर डामर ने तत्काल उत्तर दिया—"सम्राट् हमारे महाराजा ने एक बहुत बड़ा शान्ति-यज्ञ किया है, यह उसी की पवित्र भस्म है।"

राजा भोज ने यह सुना तो बड़े ही प्रसन्न भाव से भस्म को अपने मस्तक पर लगाया और दूसरे सभासदों को भी थोड़ी-थोड़ी दी। बदले में बहुत बड़ी भेंट लेकर डामर भीम देव के पास पहुँचा। भीम देव अपने राजदूत की प्रतिभा का विलक्षण चमत्कार देख कर हर्ष से फूला नहीं समाया।

समय का मूल्य

अंग्रेजी साहित्य के सुप्रसिद्ध लेखक स्वेट मार्डेन ने लिखा है कि मि० वेंजमिन फ्रेंकलिन समय के वड़े ही कदरदान थे। उनकी पुस्तकों की एक दूकान थी। कहा जाता है—एक वार एक ग्राहक आया, और वड़ी देर तक दूकान के सामने चक्कर काटता रहा।

आखिर उसने पूछा—"इस पुस्तक की क्या कीमत है?"

क्लर्क ने उत्तर दिया—"एक डालर।"

"एक डालर! क्या इससे कम नहीं?"

"नहीं।"

ग्राहक ने थोड़ी देर इधर-उधर देखने के वाद क्लर्क से पूछा—

"क्या मि० फ्रेंकलिन भीतर हैं?"

"हां, अभी काम में लगे हैं।"

"मैं जरा उनसे मिलना चाहता हूँ।"

आखिर मि० फ्रेंकलिन वाहर आए तो खरीदार ने पूछा—

"मि० फ्रेंकलिन, आप इस पुस्तक की कम से कम क्या कीमत लेंगे?"

"सवा डालर।"

"सवा डालर! अभी तो आपका क्लर्क एक डालर कहता था।"

"ठीक है, लेकिन अपना काम छोड़ कर आने में मेरा समय भी तो खर्च हुआ न? वह कहाँ जाएगा?"

खरीदार आश्चर्य में था। उसने अपनी बातचीत को जल्दी ही समाप्त कर देने के विचार से फिर पूछा—

"अच्छा, अब इसकी कम से कम कीमत बता दीजिए तो मैं ले लूँ।"

"डेढ़ डालर।"

"डेढ़ डालर! वाह, अभी तो तुम सवा डालर ही कह रहे थे।"

"हाँ, मैंने वह कीमत उस समय कही थी। पर अब तो डेढ़ डालर ही होगा। ज्यों-ज्यों आप देर करते जायेंगे, पूछ-पूछ कर हमारा समय बर्बाद करते जायेंगे, त्यों-त्यों किताब की कीमत पर समय का मूल्य भी बढ़ता जायगा!"

ग्राहक ने जेब से पैसे निकाल कर दे दिए और किताब लेकर चुपचाप घर का रास्ता नापा। उसे आज समय को धन के रूप में परिवर्तित कर देने वाले स्वामी से एक उत्तम शिक्षा मिल गई थी! ठीक है, समय सब से बड़ा धन है।

———

सात सौ बच्चे !

महिला विद्यापीठ प्रयाग में एक मद्रासी सज्जन अपनी पुत्री को भरती कराने आए। उन्होंने विद्यापीठ की अध्यक्षा श्री महादेवी वर्मा से पूछा "देवी जी आपके कोई सन्तान भी है ?"

"हाँ हाँ, मेरे तो सात सौ बच्चे हैं", देवी जी ने हँसते हुए कहा।

मद्रासी सज्जन की आँखों में विस्मय भर गया कि यह क्या ? देवीजी ने स्पष्टीकरण किया, "ये सब विद्यार्थी मेरे बच्चे ही तो हैं !"

उदार हृदय फ्रेडेरिक महान्

जर्मनी में प्रशिया के फ्रेडेरिक महान् को तानाशाह गिना जाता था। एक बार उसने देखा कि एक दीवार के पास लोगों की खासी अच्छी भीड़ जमा है।

निकट पहुँचने पर उसे ज्ञात हुआ कि दीवार के ऊपरी हिस्से में एक पर्चा लगाया गया है, जिस में उस की कटु आलोचना की गई है ; किन्तु अधिक ऊँचाई पर होने के कारण पर्चा ठीक पढ़ने में नहीं आ रहा है।

महान् फ्रेडेरिक ने अपने पास के सेवकों को आज्ञा दी कि वे पर्चे को जरा नीचे लगा दें ; ताकि लोग उसे अच्छी तरह पढ़ सकें। आज्ञा के अनुसार पर्चा नीचे लगादिया गया।

यह है बड़ों का बड़प्पन।

जहाँगीर का न्याय

दिल्ली के मुग़ल बादशाह जहाँगीर की बेगम नूरजहाँ एक दिन अपनी सहेलियों और बाँदियों के साथ किले के सबसे ऊंचे महल की छत पर टहल रही थी। इतने में उसने यमुना नदी के तट पर कुछ पक्षी उड़ते देखे। चट बन्दूक ले कर निशाना बाँधा। परन्तु बंदूक की गोली से पक्षी तो एक भी न मरा, हाँ एक धोबी, जो कपड़े समेट रहा था, ज़रूर मारा गया।

धोबी की स्त्री रोती-कलपती महल के पास आई और उसने न्याय की जंजीर खींची। बादशाह ने उसे दूसरे दिन दरबार में आने की आज्ञा दी।

दूसरे दिन ठीक समय पर दरबार लगा। बादशाह सिंहासन पर आसीन हुए। धोबिन के मामले का फैसला सुनने के लिए लोगों की खासी अच्छी भीड़ जमा थी। नूरजहाँ भी चिक की ओट में बैठी मुकदमे का हाल देख रही थी।

धोबिन ने कहा—"जहांपनाह! कल शाम को यमुना के किनारे जब मेरा पति धुले कपड़े इकट्ठा कर रहा था, तब आपकी मलका ने उसको गोली से मार दिया। मैं अब अनाथ हूँ, आप से न्याय चाहती हूँ।" बादशाह ने चिक की ओर मुँह करके नूरजहाँ से पूछा—"क्या यह धोबिन सच कहती है?" नूरजहाँ ने कहा—"हाँ जहांपनाह।"

इस पर बादशाह ने कहा कि 'न्याय के सामने राजा और प्रजा सब बराबर हैं। नूरजहाँ ने अपराध किया है, उसे इसका

फल भोगना चाहिए।' यह कहते हुए बादशाह ने अपनी तलवार धोबिन को दी और उसके सामने गर्दन झुका कर कहा—"तुझे नूरजहाँ ने विधवा बनाया है, इसलिए तु मेरा सिर काट कर इसको भी विधवा कर दे। जो जैसा करे, उसे वैसा ही मिलना चाहिये। इस मामले का सही फैसला यही हो सकता है।"

बादशाह के इस अनोखे न्याय को सुनकर सब लोग दंग रह गए। बिचारी धोबिन हाथ जोड़ कर चरणों में गिर पड़ी। जब धोबिन ने तलवार फेंक दी, तो बादशाह ने उसे अच्छी पेंसन देकर विदा किया।

नेपोलियन की गुण-ग्राहकता

सत्पुरुष का यह एक मुख्य लक्षण है कि वह अपने विरोधी की भी योग्यता का सत्कार करता है, और व्यक्तिगत राग द्वेष या मत-भेद के कारण किसी के साथ अन्याय नहीं करता। नेपोलियन ने एक बार अपने एक प्रतिकूलवादी आलोचक को राज्य के उच्च पद पर नियुक्त किया। लोगों ने उसे सुझाया कि वह तो आप के विषय में अच्छे विचार नहीं रखता। पर नेपोलियल ने कहा—"यदि वह अपना काम योग्यता पूर्वक करता है, तो मुझे चिन्ता नहीं है कि मेरे विषय में उसकी व्यक्तिगत धारणा क्या है। मुझे तो उसके काम से मतलब है।"

बुरा भागे या भला

श्री घनश्यामदास बिड़ला ने एक बार गांधी जी से कहा—"महात्मा जी, आप के इर्द-गिर्द के लोगों मे कितनेक बुरे आदमी भी आ गए हैं।"

इस पर गांधी जी ने हँसते हुए कहा—"तो इसका मुझे क्या डर है ? मुझे कोई धोखा नहीं दे सकता। जो मुझे धोखा देने मे अपने को दक्ष समझते है वे स्वयं अपने आप को धोखा देते हैं। मैं तो शैतान के पास भी रहने को तैयार हूँ, किन्तु शैतान मेरे पास कैसे रहेगा ? जो बुरे हैं, वे स्वयं मुझे त्याग देंगे।"

हुआ भी ऐसा ही। कितने ही लोग गांधी जी के साथ हुए, कुछ देर चले, अपनी दुर्बलताओं से अन्त मे इधर उधर भटक गए। किन्तु गांधी जी अपने पथ पर बढ़ते ही गए। बुरे लोगों से बचने की धुन मे भागने फिरने की आवश्यकता नहीं। ख़ुद मे सचाई चाहिए, या तो बुरे भले बन जायेंगे, या वे ख़ुद भाग जायेंगे !

सत्य को हँसी का डर नहीं

एक बार किसी विशेष प्रसंग पर चर्चा करते हुए श्री घनश्यामदास बिड़ला ने गांधीजी से पूछा कि "आपने ऐसा कौन-सा काम किया है, जिसे साहस की दृष्टि से आप अपने जीवन में ऊँचे-से-ऊँचा स्थान दे सकें ?"

"इस दृष्टि से तो मैंने कभी नहीं विचारा।" गांधीजी ने कहा, "किन्तु मैं समझता हूँ बारदोली सत्याग्रह स्थगित करके मैंने बहुत बड़े साहस का परिचय दिया। चौबीस घंटे पहले सरकार को चुनौती देकर ललकार करना और फिर अचानक सत्याग्रह को स्थगित करना, यह अपने आपको बेहद हास्यास्पद बनाना था; किन्तु मैं तनिक भी न झिझका। जो सत्य था वही मेरा राजमार्ग था और इसी लिए मेरी अपनी हँसी होगी, इस विचार ने मुझे कभी भयभीत नहीं किया। मेरे जीवन के बड़े साहसिक कामों में यह एक था, ऐसा मैं मान सकता हूँ।"

गांधीजी के उत्तर का मर्म ऊपर से नहीं, गहराई में जाकर समझना चाहिए। आगे बढ़ना या पीछे हटना, गांधीजी की दृष्टि में इनका कोई मूल्य नहीं, मूल्य है एकमात्र सत्य का। सत्य के लिए कभी पीछे भी हटा जा सकता है, फिर भले कितनी ही क्यों न हंसी हो, मजाक़ हो !

कुत्ते की जगह प्रेसीडेन्ट

एक बार मिस्टर और मिसेज कूलिज दोनों ही ह्वाइट-हाउस से बाहर गए थे। ह्वाइट-हाउस में नया रंग रोगन चल रहा था। अचानक तार मिला कि प्रेसीडेण्ट कूलिज समय से पूर्व ही प्रवास से लौट रहे हैं।

उस समय ह्वाइट-हाउस में सब अस्त-व्यस्त पड़ा था। जल्दी जल्दी व्यवस्था की गई। नौकरों ने लाइब्रेरी की पुस्तकें समेट कर रखी। लेकिन प्रेसीडेण्ट का एक कुत्ता कूद फांद कर फिर अस्त-व्यस्त कर गया। नौकर को क्रोध आगया। उसने एक बड़ी पुस्तक उठा कर भागते हुए कुत्ते पर फेंकी। कुत्ता तो नदारद था। लेकिन परदे के पीछे से एक हलकी सी आह निकली और थोड़ी देर मे देखा, प्रेसीडेण्ट साहब माथा घिसते हुए बाहर निकले। नौकरों को उन्होंने केवल यही कहा—"बहुत गरमी है यहां?" न डांटा न फटकारा, न नौकरी से अलहदा किया।

सभ्यतापूर्ण व्यवहार का ध्यान, प्रेसीडेण्ट को अपने नौकरों से बर्ताव करते हुए भी रखना पड़ता है।



शिवाजी की नैतिक पवित्रता

शिवाजी महाराज ने घनघोर युद्ध के बाद मुगल सेना से एक किला जीता। किलेदार भाग गया, किन्तु उसकी लड़की पकड़ी गई। लड़की बहुत सुन्दर थी। जब सेनापति ने लड़की को शिवाजी की सेवा में उपस्थित किया तो वह डरी हुई थी कि—"मुझे अब दासी होना होगा। अब मैं अपने माता-पिता का मुँह कभी न देख सकूँगी। पता नहीं, मेरे साथ क्या व्यवहार होगा?"

परन्तु शिवाजी ने लड़की को देखते ही भरे दरबार में कहा—"अहा, कैसी सुन्दर लड़की है। यदि यह मेरी माँ होती तो मैं ऐसा कुरूप न होता।"

लड़की को बहुत कुछ धनराशि देकर कहा कि—"बेटी! लो, यह तुम्हारी शादी का दहेज है। इसे लेकर अपने पिता के पास जाओ, वह योग्य वर ढूँढ़ कर तुम्हारी शादी कर देंगे। जैसी तुम अपने पिता की पुत्री हो, वैसे ही मेरी भी हो।"

जाके मन में अटक है, सोई अटक रहा

आमेर नरेश महाराजा मानसिंह युद्ध करने के लिए काबुल जा रहे थे। उनकी विराट सेना विजय पर विजय प्राप्त करती हुई आगे बढ़ रही थी। परन्तु ज्यों ही मार्ग में अटक (सिन्धु नदी) आया, तो सब-की-सब सेना विचार मूढ़-सी तट पर खड़ी होगई। बात यह हुई कि सेना के राजपूत सिपाही अटक नदी को पार करने से हिचक रहे थे। उनको यह भ्रम था कि मुसलमानी देश में जाने से कहीं हमारा धर्म न जाता रहे !

महाराजा मानसिंह को जब यह पता लगा तो उन्होंने कहा—संसार की सब भूमि प्रभु गोपाल की है, भला इस में अटक अर्थात् रुकावट कैसी ? जिस के मन में अटक है, वह ही अटकता है, और कोई नहीं। अटक पार कर विदेश मे जाने से धर्म नहीं जाता। धर्म का सम्बन्ध आत्मा की सच्ची श्रद्धा से है, किसी भूमि-विशेष से नहीं।

सबै भूमि गोपाल की, या में अटक कहा !
जाके मन में अटक है. सोई अटक रहा !!

प्रीत के टाँके

स्वामी सहजानन्दजी गुजरात के एक महान् वैष्णव सन्त हो गए हैं। आत्माराम नामक उनका एक दर्ज़ी शिष्य था। उसने उन्हें भेंट करने के लिए एक बहुत सुन्दर अँगरखा सीया। भावनगर के नरेश ने जब इस अँगरखे को देखा, तो इतने प्रसन्न हुए कि ऐसा ही एक सुन्दर अँगरखा अपने लिए सी देने पर सौ रुपये सिलाई देने को तैयार हो गए।

इस पर दर्ज़ी ने जो उत्तर दिया, वह इतिहास का एक अजर-अमर सन्देश है। उसने कहा—"महाराज! ऐसा दूसरा अँगरखा तो मुझ से नहीं सीते बनेगा। इस अँगरखे में तो प्रीत के टाँके पड़े हैं। ऐसे टाँके आपके अँगरखे में डालने के लिए मैं दूसरी प्रीत कहाँ से लाऊँ ?"

सच्ची कला का सर्जन इस प्रकार होता है। बिना प्रेम-रस के कला, कला नहीं, एक प्रकार का फूहड़पन है।

कर्तव्य-निष्ठा

एक बार की बात है—पेरिस मे बड़ा ही भयंकर दंगा हुआ। 'मेथ्यू डेन्जलर' नामक पत्रकार दंगाइयों द्वारा फेंके जाने वाले पत्थरों की वर्षा मे बैठा अपने पत्र के लिए विवरण लिख रहा था। दंगा काबू में न आया तो अन्त में विवश होकर फौज ने गोली चलादी।

पत्रकार को भी गोली लगी और वह घायल होकर गिर पड़ा। सहायता के लिए डाक्टर आया, पूछा—"क्या तुम भी घायल हो?" उत्तर मिला—"हाँ इतना घायल कि लिख भी नही सकता।"

डाक्टर ने कहा—"लिखने मे क्या रक्खा है? अब तो तुम्हारे लिए सबसे मुख्य आराम करना है।" पत्रकार ने कहा—"आराम मुख्य नहीं है। मुख्य काम है अपने कर्तव्य की पूर्ति करना। सबके अपने-अपने काम होते हैं। मैं पत्रकार हूँ, मेरा काम घटना का वर्णन लिखना है। यह मेरी कलम लो और इस पृष्ठ पर नीचे लिखदो—सायंकाल तीन बजकर बीस मिनट। फौज की गोली चलने से तीन घायल हुए और एक मरा।

डाक्टर ने पूछा—"मरा कौन?" उत्तर मिला—"मैं!" और इतना कहते-कहते उसके प्राण निकल गए।

क्या करें, का प्रश्न ही क्यों ?

गांधी जी ने लंबे उपवास शुरू कर रक्खे थे। उपवास में वे जिन्दा रहेंगे या मर जायँगे, इसका किसको पता था ? सब ओर एक भय और आशंका का वातावरण घनीभूत हो रहा था ! इस पर आश्रम के भाइयों ने उनसे पूछा—"आप यदि उपवास में चल बसे तो हम कौनसा काम करें ?"

गांधी जी ने जवाब दिया—"इस तरह का सवाल ही आपके सामने कैसे खड़ा हुआ ? मैंने आपके लिए काफी काम रख छोड़ा है। हिन्दुस्तान में खादी करनी है, खादी का शास्त्र बनाना है। जात-पॉत की बीमारी को दूर करना है। भूखे देश के लिए रोटियों का प्रबन्ध करना है। इतना बड़ा काम आपके लिए होते हुए भी आपको 'क्या करें ?' ऐसी चिन्ता क्यों होती है ?"

संसार में काम की कमी नहीं, काम करने वालों की कमी है। मनुष्य के जीवन में क्या करें का प्रश्न ही क्यों पैदा हो, जबकि उसके चारों ओर काम का क्षीर-सागर ठाठें मार रहा है।

राजा भोज की उदारता

धारा नगरी का राजा भोज अपने युग का एक बड़ा ही उदार-हृदय दानी पुरुष था। वह जब दान देने लगता तो लाखों-करोड़ों का धन मुक्त हस्त से याचकों को अर्पण कर देता था। इस प्रकार खजाने को खाली होता देखकर मन्त्री ने, जहाँ सभा-मण्डप में सम्राट बैठते थे वहाँ, सामने के भार-पट्ट पर, एक दिन खड़िया से लिख दिया—'आपत्ति काल के लिए धन की रक्षा करनी चाहिए।' 'आपदर्थं धनं रक्षेद्।'

प्रात.काल जब राजा सभा-मण्डप में आए तो वह लेख पढ़ा और उसके नीचे उत्तर में लिख दिया—'भाग्यशाली को आपत्ति कहाँ' 'श्रीमतामापदः कुतः ?'

मन्त्री ने जब यह उत्तर पढ़ा तो सन्ध्या समय घर जाते हुए चुपके से फिर लिखा—'यदि कभी दैवभाग्य रूठ जाए तो ?' 'कदाचित् कुपितो दैवः ?'

अगले दिन राजा ने मन्त्री के उक्त प्रश्न के उत्तर में एक बड़ा ही महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त-वाक्य लिखा—'तब तो सञ्चित भी नष्ट हो सकता है।' 'सञ्चितं पि विनश्यति।'

राजा भोज अपने जीवन-भर अविराम गति से दान-पथ पर अग्रसर होते रहे। उन्हें आपत्ति के दिन कभी देखने ही नहीं पड़े ?

एक चित्र के दो पहलू

यूरोप में यात्रा करते हुए एक वार घनश्यामदासजी विडला की गाड़ी किसी दूसरी गाड़ी से टकरा गई। विडलाजी की गाड़ी के अंग्रेज ड्राइवर ने ब्रेक बाँध कर गाड़ी खड़ी की। दूसरे ने भी ऐसा ही किया। दोनों नीचे उतरे। चुप-चाप अपनी-अपनी गाड़ी का प्रत्येक ने निरीक्षण किया। फिर एक ने दूसरे से पूछा—

"Are you insured ?" क्या आपका बीमा हो गया ? उत्तर मिला—"yes—जी हाँ," फिर प्रश्न "Any damage"—गाड़ी को कुछ नुकसान तो नहीं हुआ ? "No" 'जी नहीं।'

इस वार्तालाप के अनन्तर दोनों ने एक दूसरे से इस दुर्घटना के लिए खेद प्रकट किया और दोनों अपने-अपने रास्ते चले गए। न आया किसी को क्रोध और न दी एक-दूसरे को गालियाँ।

अब ज़रा अपने देश वासियों का भी किस्सा सुनिये, विडलाजी के शब्दों में ही। दो गाड़ियाँ भिड़ते-भिड़ते वाल-बाल बच गईं। गाड़ीवानों ने ब्रेक बाँधा और गाड़ियाँ खड़ी कीं। गाड़ियाँ भिड़ी तो थी ही नहीं, इसलिए नुकसान का तो सवाल ही क्या था, पर हमारे भारतीय वीर इस प्रकार टलने वाले थोड़े ही थे। श्री गणेश हुआ गालियों और अपशब्दों से—"क्या आँखें फूट

गई थीं।" "तेरे बाप ने भी कभी गाड़ी चलाई थी।" "मैं तो तेरा बाप जन्मा तब से गाड़ी चलाता हूँ।" "उल्लू का पट्ठा, एक साल जेल में कटेगी, तब होश आयेगा।" भीड़ जमा हो गई, ट्राफिक रुक गया। पुलिस आई तब दोनों हटे।

सत्कर्म में लज्जा कैसी !

स्वामी भवानीदयाल जी की पत्नी जगरानी जेल में बीमार हो गई। गांधी जी ने एक ठेलागाड़ी पर उन को लिटा दिया और फिर स्वयं ही वे ठेलागाड़ी को खींचने लगे। इस पर भवानीदयाल जी ने कहा—"हमारी मौजूदगी में आप का गाड़ी खींचना शोभा की बात नहीं है।" गांधी जी ने स्वामी जी को फटकार बताते हुए जरा कठोर वाणी में कहा "मेरे शुभ काम में किसी को दखल देने का अधिकार नहीं है। जब मैं थक जाऊंगा, तब तुम्हें बुला लूंगा। सत्कर्म करने में किसी को किसी तरह की लज्जा क्यों हो?" बापू जी दो ढाई मील अकेले ही ठेलागाड़ी खींचकर आश्रम तक ले गए।

जन-हित ही सच्चा प्रभु-भजन है।

एक सज्जन ने गाँधीजी को लिखा कि—"अब आप संसार में थोड़े ही दिनों के महमान हैं, इसलिए बेहतर यह है कि आप सारे काम-धाम को छोड़कर अपना अन्तिम समय भगवद्-भजन में बिताएँ।

गाँधी जी ने इसका बड़ा ही सुन्दर उत्तर लिख भेजा। वह उत्तर हर किसी साधक के लिये अंधकार में प्रकाश का काम देगा। उत्तर इस प्रकार है :—

—"आपने लिखा सो ठीक है। पर हम अन्तिम समय को ही ईश्वर-भजन में बिताएँ और बाकी जीवन में बेफिक्र रहें, यह सारी भावना भूल भरी है—हमारी गर्दन तो हर क्षण काल के हाथों पड़ी है, इसलिए सारा का सारा जीवन ही अन्तिम घड़ी है, ऐसा मानना चाहिए। और मेरी बात तो यह है कि मेरा प्रतिक्षण ईश्वर भजन में ही व्यतीत होता है।"

लोक-कल्याण के पथ पर चलने वाले यात्री का हर क्षण पर-हित में गुजरता है और वह सच-प्रभु-भजन ही है। भजन का अर्थ केवल आँख मूंद कर बैठ जाना नहीं। मृत्यु पर विजय सत्कर्म ही दिला सकता है।

विकारों के लिए भी स्थान चाहिए

प्राचीन यूनान के एक धनी ने वहाँ के एक नामी विद्वान को अपना नव-निर्मित भव्य भवन देखने के लिए बुलाया। उसे साथ लेकर वह बड़ी देर तक एक-एक कमरे की शोभा और स्वच्छता दिखाता रहा। इसी बीच में उस विद्वान् को थूकने की इच्छा हुई, परन्तु वहाँ कहीं इसके लिए उपयुक्त स्थान नहीं मिला। सभी दीवालों पर लिखा था, कि यहाँ थूकना मना है। सम्मान्य अतिथि से नहीं रहा गया। उसने सोच-विचार कर एक ऐसी बात कही, जिससे धनी को हँसी आ गई। ज्योंही उसने हँसने के लिए मुँह खोला, विलायती पण्डित ने उसके मुँह में थूक दिया। धनी ने बिगड़ कर उससे इस अशिष्टता का कारण पूछा। विद्वान् ने कहा—"मुझे यही एक स्थान दिखाई पड़ा, जहाँ यह नहीं लिखा था कि थूकना मना है।"

प्रायः लोग इस बात को भूल जाते हैं कि संसार विकारमय है। स्वयं अग्नि भी, जो सब विकारों को जला देती है, निर्धूम नहीं होती। मानव-जीवन में भी विकार होते हैं। धुआँ निकालने के लिए जिस प्रकार छिद्र चाहिए, उसी प्रकार मनुष्य के स्वाभाविक, शारीरिक एवं मानसिक विकारों को मर्यादित करने के लिए उपयुक्त स्थान या मार्ग चाहिए। घर में यदि छोटी-छोटी नालियाँ नहीं तो सारा घर ही गंदगी से भर जाएगा।

मज़ाक़ आखिर मज़ाक़ है !

इंग्लैण्ड के राजकुमार ड्यूक ऑव विंडसर, जब प्रिंस ऑव वेल्स थे तो अपने सहपाठियों के साथ रेल में साधारण बालकों की भाँति सफ़र करते थे। एक बार गाड़ी का कंडक्टर जब उनके डिब्बे के सामने से गुज़रा तो जेब में से एक मटर निकाल कर अंगुली से तान कर उन्होंने कंडक्टर के कान पर चुप के से दे मारी।

कंडक्टर ने मुड़कर पूछा,—"लड़को, यह मटर किसने मारी?" किसी ने जवाब नहीं दिया तो कंडक्टर ने युवराज के चेहरे पर शरारत देख कर सोचा, यह लड़का शैतान मालूम होता है, और दो चार थप्पड़ जमा दिए। किसी जानकार ने कंडक्टर से कहा कि भावी सम्राट को पीटने के लिए उन्हें बधाई है।

बिचारा कंडक्टर इतना सुनते ही कुछ हतप्रभ-सा हो गया। परन्तु हँसोड़ शाहज़ादे ने मज़ाक़ को मज़ाक़ में उड़ा दिया और खिल-खिला कर हँस पड़ा। बात वहाँ की वहाँ आई गई हो गई।

परन्तु कथा-लेखक बिड़लाजी अन्त में पूछना चाहते हैं। कि यदि ऐसी घटना भारत में होती तो क्या होता? इसका ज़रा विचार कर लेने की ज़रूरत है। क्योंकि भारतवासी अभी हँसी को हँसी नहीं समझते।

यह सब किस लिए ?

गगन चुम्बी हिमगिरि के शिखरों के बीच तिब्बत में एक वृद्ध बौद्ध भिक्षु रहता था। साठ वर्ष की तपस्या द्वारा उसने शान्ति प्राप्त की थी। पल-पल मे 'बुद्धं शरणं गच्छामि' रट-रट कर उसने अपने अन्दर की पशु-वृत्ति को वश में कर लिया था। सनातन हिम का दर्शन कर के उसकी दृष्टि निर्मल हो गई थी। वह सुखी था, शान्त था। भावनामय जीवन का आनन्द उसने प्राप्त किया था। अनुकम्पा से द्रवीभूत होकर उसने सारे जगत् को अपने मे लपेट लिया था।

उसके पास इक्कीस वर्ष की एक आस्ट्रेलियन विमान-विहारिणी नव-युवती आई। बाल्यावस्था से ही उसने विज्ञान को तथा विज्ञान द्वारा प्राप्त शक्ति को अपना लिया था। गर्व के साथ वह वृद्ध साधु के पास आई। वह समझ रही थी, पाषाण-सा जड़ वह साधु निकम्मा है। वृद्ध की ओर तिरस्कार पूर्वक निहारते हुए युवती ने अपना परिचय दिया :—

"मैं इक्कीस वर्ष की तरुणी हूं। मैं विमान-विहारिणी हूं। इस विषय मे मेरा इतना योग्य और कोई नहीं।"

वृद्ध ने पूछा—"तुमने क्या किया है ?"

तरुणी ने कहा—"मैं उन्नीस वर्ष की थी, तब एक घण्टे मे दो-सौ मील की गति से मेलबोर्न से उड़ कर बम्बई आई थी। बीस वर्ष की हुई, तब तीन-सौ मील प्रति घण्टे की चाल से

मेलबोर्न से लंदन गई। और अब चार-सौ मील प्रति घण्टे के वेग से समस्त संसार के आर-पार उड़ आई हूँ।"

शान्त और संयमी वृद्ध ने साठ वर्ष के भावनामय जीवन से प्रेरित होकर प्रश्न किया—"इतनी शीघ्रता किस लिए ?"

तरुणी चुप थी। उसे कोई उत्तर नहीं मिल रहा था। आखिर इस दौड़-धूप का कोई उद्देश्य ? यह पूर्व का प्रश्न है, जो पश्चिम से ठीक उत्तर की माँग कर रहा है। इतना उतावलापन किस लिए ? एक दूसरे का विनाश करने के लिए ? मानव का स्वातंत्र्य और स्वाभिमान छीन लेने के लिए ? मानव को अपने श्रम से जो सुख सुविधा प्राप्त है, उसे हर लेने के लिए ? मैं भी उस वृद्ध भिक्षु का प्रश्न पुनः पूछ लेता हूँ—यह सब किस लिए ?

शुभ काम स्वयं आशीर्वाद है

राजस्थान की एक सुप्रसिद्ध सेविका के सम्मान में एक विशाल अभिनन्दन-समारोह का विराट आयोजन किया जा रहा था। उसकी सफलता के लिए गांधीजी से आशीर्वाद माँगा गया। गांधी जी ने लिखा—"शुद्ध सत्य तो यह है कि किसी भी शुभ काम में किसी के आशीर्वाद की आवश्यकता ही नहीं होती। क्योंकि शुभ काम स्वयं ही आशीर्वाद रूप होता है। उसी में उसकी सफलता है।"

इसने मुझे पारस समझा

अकबर की सभा में जो नवरत्न थे, उनमें खानखाना प्रमुख थे। वे जितने कुशल सैनिक और शासक थे, उससे भी बढ़कर रामभक्त कवि थे।

एक बार वे पालकी में बैठे कहीं जा रहे थे। मार्ग में ऐसा हुआ कि उनके अंगरक्षकों के देखते-देखते ही एक निर्धन व्यक्ति ने लोहे का एक भारी बाट उठाकर उन पर दे मारा।

खानखाना बच गए, पर अंगरक्षकों ने बेचारे उन निर्धन व्यक्ति को पकड़ लिया। निश्चय था कि वे उसे मार डालते, पर उसी क्षण पालकी से निकल कर खानखाना ने उन्हें रोक दिया।

अंगरक्षक बोले—'हुजूर! इसने आप पर वार किया है।'

"नहीं", खानखाना मुस्कराकर बोले—"इसने मुझे पारस पत्थर समझा, तभी तो लोहा फेंका है। जाओ. इसे बाट के बराबर सोना दे दो।"

नौकर सो रहा था

अमेरिका के राष्ट्रपति का एक निजी अधिकारी किसी विशेष कार्यवश रात को लग-भग दो बजे लौटा और भवन के किवाड़ खड़खड़ाने लगा। थोड़ी देर में देखता है कि स्वयं राष्ट्रपति ने आकर किवाड़ खोले और पूछा—"कहो, सब ठीक है?"

अधिकारी ने देर में आने के कारण क्षमा माँगी। इस पर राष्ट्रपति ने कहा—"इसमें कष्ट की क्या बात है? यदि मैं न आता तो तुम्हें रात भर बाहर ही पड़ा रहना पड़ता। मेरे सिवा मकान में यहाँ आज कोई नहीं है। हाँ, मैं अपने नौकर को भेज सकता था, पर वह सो रहा था। उसको जगाना मैंने ठीक नहीं समझा।"

बादशाह महमूद और दो उल्लू

एक बार बादशाह महमूद अपने वजीर के साथ जंगल में जारहा था कि उसे एक पेड़ पर दो उल्लू दिखाई दिए। उसने वजीर से पूछा—बतलाओ. ये दोनों क्या बातें कर रहे हैं ?

वजीर दयालु था। बादशाह की लूटमार से सैंकड़ों तबाह हो गए थे- उजड़ गए थे। साहसी वजीर ने सोचा, यह अवसर है बादशाह को कुछ खरी और साफ बात सुनाने का। अतः उसने कुछ देर सोचकर कहा :—

"हुजूर, इन दो उल्लुओं में एक लड़की का बाप है और दूसरा लड़के का। लड़के का बाप कह रहा है कि मैं दहेज में दस उजाड़ खंड लूँगा। लड़की का बाप कहता है कि क्या बड़ी बात है ? अगर बादशाह महमूद बना रहा तो मैं दस क्या बीस उजाड़ खंड आपकी नजर कर दूँगा।"

बादशाह सुनकर लज्जित हो गया। उस दिन से कहते हैं. उसने अत्याचार करना छोड़ दिया।

———

वीरवर जाम्बा !

वनराज चावड़ा राजा होने से पहले इधर-उधर डाके डाला करता था। एक बार की बात है कि वह अपने तीन साथियों के साथ घने जंगल में से जा रहा था। वहाँ उन्हें जाम्बा नामक एक जैन व्यापारी मिला। वनराज ने कहा—"जो तेरे पास है, रखदे। यदि चूँचपड़ की तो देख ले, मौत के घाट उतार दिया जायगा।'

जाम्बा ने हँस कर कहा—"अच्छा, यह बात है। लो मैं तैयार हूँ।" यह कहते हुए जाम्बा ने अपना धनुष सँभाला और अपने पास के पाँच बाणों में से दो को एक ही झटके में तोड़ डाला।

वनराज ने चकित होकर पूछा—"अरे जीवन-मरण के इस विकट प्रसंग पर तूने अपने दो बाण क्यों तोड़ डाले?" जाम्बा ने उत्तर में कहा—"तुम तीनों के लिए तीन बाण काफी हैं। दो फालतू थे, उनका क्या करता?"

वनराज ने कहा—"मालूम होता है, तुझे अपने अचूक लक्ष्य-वेध पर गर्व है। यदि तू ऐसा ही अचूक लक्ष्य-वेधी है तो उस दूर उड़ती चिड़िया को बींधकर दिखा ताकि पता चले तू कितने गहरे पानी में है।"

इस पर जाम्बा ने कहा—"उस विचारी निरपराध चिड़िया को क्यों मारूँ? मेरे लक्ष्य-वेध की परीक्षा तो तुम जैसों के दुराचारी सीने पर होती है।"

वनराज चावड़ा जांबा की वीरता और साहस को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। तेज हवा के कारण तीव्र गति से काँपते हुए वृक्ष के नन्हें-से पत्ते को जब जांबा ने बींधा तो वनराज और उसके साथियों ने हर्ष-ध्वनि की।

तदनन्तर वनराज चावड़ा जब गुजरात का राजा हुआ तो उसने जांबा को बुलाकर अपना प्रधान-मंत्री तथा प्रधान सेना-नायक बनाया।

राज्य तो यह खड्ग है

अमरसिंह राठौर जब जोधपुर से निकाल दिए गए, तब क्या वह एक दम निराश और हताश होकर बैठ गए थे? नहीं उन्होंने जीवन में किंकर्तव्य मूढ़ होना कभी जाना ही नहीं।

जोधपुर छोड़ते हुए उन्होंने उत्साहपूर्वक जो कहा था, वह आज भी निराशा के अन्धकार में बिजली चमका देने वाला है।

उन्होंने तलवार को हाथ में तानते हुए कहा था—"हमारा राज्य तो यह खड्ग है। इसकी दोनों धारें राज्य की सीमा, इसका सिरा सिंहासन और इसकी मूठ हमारा खजाना है। इसकी सहायता से एक मारवाड़ क्या सारी पृथ्वी का राज्य लिया जा सकता है।"

मूर्ख आलोचक

एक बार लार्ड नार्थस नाटक देख रहे थे। उनके पास ही एक मूर्ख आलोचक भी बैठा था। जो बहुत उतावला और वाचाल प्रकृति का धनी था।

उसने लार्ड से सामने की ओर संकेत करते हुए कहा— "देखिए, वह सामने वाली औरत कितनी भद्दी है ?"

उत्तर मिला—"हाँ, वह मेरी स्त्री है।"

उस मूर्ख ने कुछ लज्जित होकर अपनी झेंप मिटाते हुए फिर कहा—"वह नहीं साहब उसकी बगल वाली !"

लार्ड ने गंभीर भाव से कहा—"अच्छा वह, वह मेरी बहिन है।"

व्यर्थ ही इधर-उधर के लोगों पर नुक्ताचीनी करने वाले अविवेकी वाचाल, समय पर, इतने लज्जित होते हैं कि कुछ पूछो नहीं। मनुष्य को तौलकर बोलना चाहिए।

क्या गधा भी इतना सुन्दर हो सकता है ?

सुप्रसिद्ध कलाकार नन्दबाबू से एक नवागन्तुक छात्र ने पूछा—"वह किस विषय को लेकर चित्रांकन करे ?" नन्दबाबू तुरंत बोले "जो भी विषय तुम्हारे नयनों के सामने आए, उसी का अंकन कर सकते हो, यथा—पुष्प, पत्र गधा आदि।" नवागत छात्र गुरु जी की तरफ जरा विस्मय-दृष्टि से निहारने लगा। मानो, वे कुछ परिहास कर रहे हों ?

शिल्प गुरु ने उस के मनोगत भाव को भाँप लिया। शीघ्र ही अपनी जेब से एक खाली कागज और पेंसिल, जो कि उन की जेब में सदा मौजूद रहते थे, निकाल कर पास ही खेत में चरते हुए एक गधे का जीवित रेखांकन (स्केच) कर बताया। छात्र उस चित्रांकन को ध्यान से निहारता रहा। अंकन पूरा होते ही वह भावावेश में बोल उठा—"गुरु जी, क्या गधा भी इतना सुन्दर हो सकता है ?"

"निःसन्देह, यदि किसी के पास अवलोकन की गहरी दृष्टि हो !" गुरु ने उत्तर दिया।

अपना-अपना भाग्य

महाराष्ट्र केसरी शिवाजी महाराज सज्जन गढ़ का किला बनवा रहे थे। एक दिन उनके मन में इस बात का कुछ अभिमान-सा हुआ, "मैं कितना बड़ा आदमी हूँ? मेरे द्वारा प्रतिदिन हज़ारों आदमियों का पालन पोषण होता है।

इसी अवसर पर अचानक ही श्री समर्थगुरु रामदास भी वहाँ आ पहुँचे। शिवाजी से बातें करते-करते श्री समर्थ ने पत्थर के एक टुकड़े की ओर संकेत कर के एक बेलदार से उसे तोड़ देने को कहा। जब वह पत्थर तोड़ा गया, तो उसके अन्दर से थोड़ा-सा पानी और एक जीता हुआ मेढ़क निकला। श्री समर्थ ने वह मेंढ़क शिवाजी को दिखलाकर कहा—"राजन! तुम बहुत शक्तिशाली हो! तुम्हारे सिवा संसार के जीवों का पालन-पोषण और कौन कर सकता है? मालूम होता है, पत्थर के अन्दर इस मेढ़क का पालन-पोषण भी तुम ही कर रहे थे।"

शिवाजी अपनी भूल समझ गए, और उन्होंने मन ही मन बहुत लज्जित होकर अपने मिथ्या अभिमान के लिए श्री समर्थ से क्षमा माँगी। योगी समर्थ का यह अद्‌भुत चमत्कार सन्देश देता है कि मनुष्य विनम्र भाव से सत् कर्म करे। प्रत्येक प्राणी अपने भाग्य का पाता है उस में दाता का, अभिमान कैसा? दाता निमित्त हो सकता है, किसी के भाग्य का कर्ता नहीं।

तीन बड़े डाक्टर !

आज से अढ़ाईसौ वर्ष पहले डाक्टर सिडेन-हम इंग्लैण्ड में एक बड़े मशहूर डाक्टर हो गए हैं। उनकी मरण-शैया के समीप सगे-सम्बन्धी, मित्र और शिष्यों का समूह जमा था। सब को अफसोस करते देखकर, वह बड़ी शान्ति से बोले "आप लोग इतना रंज क्यों कर रहे हैं ? मुझे तो बड़ा सन्तोष है कि मैं अपने पीछे अपने से कहीं महान् तीन डाक्टर छोड़े जा रहा हूँ।"

उपस्थित सज्जनों ने आश्चर्य-मुद्रा से उनकी ओर देखा— "क्या कहते हैं यह ? सिडेन-हम जैसा एक भी तो डाक्टर मिलना असम्भव है।" उन्हीं के शिष्यों में से एक ने आश्चर्य और विनय से पूछा—"वे तीनों नाम बताने की कृपा कीजिये !"

सिडेन-हम ने उपस्थित जनों की ओर देखते हुए आहिस्ता से जवाब दिया :—

इन तीन महान् चिकित्सकों के नाम हैं :—

हवा, पानी, कसरत !

———

सिकन्दर और बुढ़िया

एक बार एक बुढ़िया सिकन्दर [1] महान् के दरबार में आई और शिकायत की कि—"हुजूर ! मेरे बेटे को डाकुओं ने मार डाला और मेरा सब धन लूट ले गए। यह कितना अंधेर है कि नीचे से लेकर ऊपर तक मेरी फरियाद भी कोई नहीं सुनता !"

सिकन्दर ने कहा—"तू जानती नहीं, मेरा राज्य कितना बड़ा है ? मेरा राज्य इतना बड़ा है कि सब जगह ठीक-ठीक प्रबन्ध करना मेरे लिए कठिन है।"

बुढ़िया ने बिगड़ कर कहा—"अगर आप ठीक तरह इंतजाम नहीं कर सकते तो राज्य को इतना बड़ा क्यों लिया ?"

सिकन्दर ने बुढ़िया के इस स्पष्ट कथन पर कुछ भी बुरा न माना। अपनी भूल स्वीकार की और डाकुओं को पकड़वा कर उचित दण्ड की व्यवस्था की।

---

१ कुछ इतिहासकार इस घटना का सम्बन्ध महमूद गजनवी से जोड़ते हैं।

महाराणा प्रताप का स्वदेश-प्रेम

मेवाड़ के गौरव, महाराणा प्रतापसिंह, घास की झोंपड़ी में, मरण-शय्या पर पड़े थे। परन्तु उनका हृदय अब बेचैन था, उनकी आत्मा को शान्ति नहीं मिल रही थी।

इस पर सरदारों ने कहा—"महाराज! अब आप शान्ति से प्रभु-चरणों में पधारिए। आपने मेवाड़ के लिए बहुत कुछ कर दिया है, अब इसकी चिन्ता न करें।"

राणा ने कहा—"मेरे मन में और कोई चिन्ता नहीं है। मुझे यह ही चिन्ता है कि मेरे मरने पर मेवाड़ का क्या होगा? मैंने देखा था—एक बार अमरसिंह इस झोंपड़ी में घुसा तो उसके सिर में चोट लग गई थी और वह घर की हीन दशा पर कुछ देर बड़बड़ाता रहा था। उसका मन झोंपड़ी में नहीं, महल में है। अतः मुझे भय है कि सुखाभिकांक्षी अमरसिंह विकट स्थिति आने पर मेवाड़ की रक्षा न कर सकेगा।"

सरदारों ने कहा, "तो इसके लिए क्या उपाय किया जाय?" राणा ने कहा—"यदि तुम सब और अमरसिंह यह प्रतिज्ञा करें कि जब तक दिल्ली विजय न कर लेंगे तब तक न दिल्ली जायेंगे, न थाल में खायेंगे, न पलंग पर सोयेंगे और न मूंछों पर ताव देंगे, तो मैं शान्ति से अपनी अन्तिम यात्रा कर सकूंगा।"

ऊपर लिखे अनुसार अमरसिंह और उपस्थित सरदारों ने जब प्रतिज्ञा ग्रहण की, तभी मेवाड़पति की आत्मा को शान्ति मिली। यह है स्वदेश भक्ति और स्वदेश-प्रेम!

सम्राट् अकबर के अर्थ मंत्री राजा टोडरमल अपने युग में बड़े ही बुद्धिमान और विलक्षण पुरुष थे। कहा जाता है, एक बार एक फकीर ने सम्राट अकबर की सेवा में अर्जी दी कि "अपने राज्य में से, जहाँ मैं चाहूँ, मुझे एक बीघा जमीन दे दी जाय।"

बादशाह ने अर्जी टोडरमल को दे दी और कहा कि "एक बीघा जमीन बहुत छोटी सी माँग है। क्या हर्ज है, दे दीजिए।"

टोडरमल ने सोचा—"हो न हो, यह फकीर काश्मीर में केशर के खेतों की एक बीघा जमीन लेना चाहता है। क्योंकि उस जमीन का एक ही बीघा पाकर यह मालामाल हो जायगा।"

अस्तु, टोडरमल ने अर्जी के उत्तर में लिखा—"केशर के खेतों को छोड़कर अन्यत्र जहाँ चाहो एक बीघा जमीन ले सकते हो।"

फकीर ने समझ लिया कि टोडरमल के सामने मेरी दाल न गलेगी। उसने अपनी अर्जी वापस ले ली। सम्राट अकबर को जब यह मालूम हुआ तो टोडरमल की बुद्धिमत्ता पर बड़ा ही प्रसन्न हुआ।

गुरु नानक और मिठाई !

गुरु नानक देव के अनन्य शिष्यों में एक शिष्य भाई लालो था, जो जाति का बढ़ई था और अपने गाढ़े परिश्रम की कमाई खाता था।

एक बार का जिक्र है कि गुरु नानक अपने इसी परम शिष्य भाई लालो के गाँव में ठहरे हुए थे, तो मलिक भागो ने, जो कि मुगल सम्राट् की ओर से उस प्रान्त के गवर्नर नियुक्त थे, गुरु की सेवा में अपनी श्रद्धांजलि भेंट करनी चाही और गुरु नानक देव को अपने दरबार में आने के लिए आग्रह किया। गुरु नानक देव ने जब उनके आमंत्रण को अस्वीकार कर दिया तो मलिक भागो स्वयं मिठाई का थाल लेकर गुरु की सेवा में उपस्थित हुआ।

जब मलिक साहब की भेंट की हुई मिठाई गुरु नानक देव के सम्मुख रक्खी गई तो उसी समय लालो के यहाँ से भी बाजरे की रूखी रोटियाँ सेवा में उपस्थित की गईं। नानक साहब ने मिठाई खाने से इन्कार कर दिया। कारण पूछने पर गुरु ने मलिक भागो के द्वारा प्रदान की गई मिठाई को अपनी मुट्ठी में कस कर दबाया जिससे खून की बूँदें टपकने लगीं। और जब लालो की रूखी रोटी को दबाया तो उसमें से दूध की धारा बहने लगी। उपस्थित जन-समुदाय के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। गुरु नानक देव ने कहा—न्यायपूर्वक अपने श्रम से कमाये भोजन में

से दूध की धारा वहती है और अन्याय एवं अत्याचार के द्वारा प्राप्त मिठाई में से गरीबों का खून टपकता है।

इस घटना से मलिक भागो बहुत प्रभावित हुआ। उसने रिश्वत, झूठ, दगा तथा अन्य नीच प्रवृत्तियों द्वारा धन एकत्रित करने का पूर्ण वृत्तान्त जनता के सन्मुख कह सुनाया। उस दिन से मलिक भागो अपने पुराने पेशे को छोड़ कर गुरु नानक का परम भक्त हो गया।

व्यापारी की प्रामाणिकता

श्रीयुत टामपियन अपने युग में एक वड़ा ही होशियार घड़ी वनाने वाला और सुधारने वाला था। उसका एक मात्र नाम ही घड़ी की उत्तमता का प्रमाण-पत्र माना जाता था। अतएव कुछ नकल खोरों ने भी उसके नाम का दुरुपयोग करना शुरू किया।

एक समय की वात है कि एक आदमी ने अपनी घड़ी उसे सुधारने के लिए दी। वह नकली थी और उस पर टामपियन का नाम लिखा था। देखते ही उसने हथौड़े से उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले और अपनी ओर से एक नई घड़ी देते हुए कहा—"लीजिए महाशय, यह मेरी वनाई हुई घड़ी है।"

यह है स्वतंत्र देशों की अपने व्यापारिक जीवन की प्रामाणिकता! उनका अहंभाव धन में नहीं, अपितु अपने नाम के अनुरूप काम में है।

कितने अड़ियल और कितने विनोदी !

गत महायुद्ध में प्रधान मन्त्री होने के कुछ ही दिन बाद, मि० चर्चिल, १० नम्बर डाउनिंग स्ट्रीट से बाहर सड़क पर निकले। सामने से एक १५ वर्ष का लड़का जोरों से सीटी बजाता आ पहुँचा। चर्चिल को सीटी की आवाज पसंद नहीं थी। उन्होंने डाँट कर कहा—'सीटी बजाना बंद करेगा।' लड़के ने कहा—'क्यों बंद करूँ ?'

चर्चिल ने जवाब दिया—'क्योंकि मैं इसे पसंद नहीं करता, बड़ी बेढब आवाज है।' लड़का बोला—'तो आप अपने कान बंद कर सकते हैं। क्या नहीं कर सकते हैं ?'

चर्चिल को गुस्सा तो आया, लेकिन वे चुपचाप परराष्ट्र विभाग के दफ्तर में चले गए। उन्होंने उस लड़के के अन्तिम शब्दों को दुहराया—'आप अपने कान बंद कर सकते हैं। क्या नहीं कर सकते ?' और फिर खुद खिल-खिला कर हँसे।

एक स्वतन्त्र और ऊँचे चरित्र वाले देश का यह जीवन है। कहाँ इंग्लैंड का प्रधान मन्त्री और कहाँ सड़क पर सीटी बजाता ऐसा लड़का ? किन्तु कितने अड़ियल, और कितने विनोदी !

मेरी अपेक्षा तुझे ज़्यादा जरूरत है !

महान् सेनापति सर फिलिप सिडनी को रणक्षेत्र में बड़ी ही घातक चोट लगी थी। रक्तस्राव इतने वेग से हुआ कि प्यास के मारे वे छटपटाने लगे। परन्तु रणक्षेत्र में पानी कहाँ। फिर भी सेनापति के लिए बहुत दौड़-धूप के बाद पानी लाया गया।

सेनापति ज्योंही पानी पीने लगे, देखा कि पास ही एक घायल सिपाही की नजर बड़े सतृष्ण भाव से पानी की बोतल पर गड़ी हुई है। सिडनी ने उसकी आँखों में पानी की प्यास देखी। सेनापति का हृदय दया से छलछला उठा। उन्होंने पानी की बोतल उसे देनी चाही। घायल सिपाही इन्कार करने लगा। इस पर महान् सेनायक ने कहा—"भैया, इस में इन्कार की क्या बात है ? मैं स्पष्ट ही देख रहा हूँ कि मेरी अपेक्षा तुझे पानी की ज्यादा जरूरत है।"

महान् सिडनी ने स्वयं पानी न पीकर घायल सिपाही को पिला दिया, और स्वयं प्यास के मारे मर गये। परन्तु उनके इस कार्य ने उन्हें इतिहास में अमर बना दिया है। समय, शक्ति और अपने जीवन को जो दूसरों के लिए अर्पण कर देता है, वह निश्चय ही महान् है !

इसे आगे बढ़ा दें

बेंजेमिन फ्रेंकलिन अपने आरम्भिक दिनों में एक अखबार छापता था। और आगे चलकर उसका सम्पादन और प्रकाशन भी करता था। उसके पास सांसारिक वस्तुओं की कोई अधिकता न थी। एक बार उसे रुपये की जरूरत पड़ी। उसने एक धनी व्यक्ति से बीस डालर माँगे। उस परिचित आदमी ने तुरन्त बीस डालर की सोने की मोहर दे दी।

थोड़े समय में फ्रेंकलिन बीस डालर बचा सका और उसे वापस करने लगा।

जब बीस डालर का सिक्का मेज पर रखा गया, उसका मित्र चकित हुआ। वह बोला कि उसने कभी बीस डालर उधार नहीं दिये थे।

फ्रेंकलिन ने उसे याद कराया कि अमुक अवसर पर, अमुक अवस्था में, उसने डालर दिये थे।

"हाँ दिये तो थे।"

"इसीलिए तो मैं लौटाने आया हूँ।"

लौटाने की बात तो कभी नहीं हुई थी। लौटाने की बात मैं कभी सोच भी नहीं सकता था।"

"इस सोने के सिक्के को रखो" उसने कहा, "किसी दिन कोई तुम्हारे पास आयेगा जिसे इसकी वैसी ही आवश्यकता होगी जैसी कभी तुम्हें थी—उसे दे देना।"

"यदि वह एक ईमानदार आदमी है तो वह कभी-न-कभी तुम्हें डालर लौटाने आएगा। जब वह आए तो उससे कहना कि वह उस मोहर को रखे और अपनी ही जैसी अवस्था में जो कोई मांगने आए उसे दे दे।"

कहा जाता है कि वह बीस डालर की मोहर आज भी अमेरिकन संयुक्त प्रजातंत्र में किसी-न-किसी की आवश्यकता पूरी करती हुई घूम रही है।

पाठक, आप भी, जो भी कुछ आपको मिले—वह कुछ भी हो, उसे आगे बढ़ा दें।

भोजन तो हो चुका !

एक बार सम्राट् नेपोलियन ने अपने सेनानायकों को भोजन के लिए बुलाया, साथ ही कुछ विचार विमर्श भी करना था। निश्चित समय पर आने में उन्हें कुछ देर हो गई। इस पर नेपोलियन तो ठीक समय पर भोजन करने के लिए बैठ गए। वह भोजन समाप्त करके उठ ही रहे थे कि इतने में सेनानायक भी आ पहुँचे। उन्हें देखकर नेपोलियन ने कहा—"भोजन तो हो चुका, आइए, अब अपना काम शुरू करें।"

समय हुआ या नहीं ?

अमेरिका के राष्ट्रपति वाशिंगटन चार बजे भोजन करते थे। एक बार उन्होंने कांग्रेस के कुछ नए सदस्यों को अपने यहाँ भोज में सम्मिलित होने का निमन्त्रण दिया। वे लोग निश्चित समय से थोड़ी देर बाद पहुँचे तो उन्होंने राष्ट्रपति को भोजन करते देखा। इस पर उनके मन को कुछ खेद हुआ।

यह स्थिति देखकर समय के पाबंद राष्ट्रपति ने कहा—"मेरा रसोइया मुझसे यह कभी नहीं पूछा करता कि मेहमान आए या नहीं ? वह केवल यही पूछता है कि भोजन का समय हुआ या नहीं ?

मिनट मिनट का मोल

राष्ट्रपति वाशिंगटन के सेक्रेटरी एक बार देर से आए। उन्होंने देर होने की क्षमा माँगी, और देरी के लिए अपनी घड़ी की सुस्ती का कारण उपस्थित किया। इस पर वाशिंगटन ने कहा—"जनाब ! या तो आप दूसरी घड़ी लीजिये, या मुझे दूसरा सेक्रेटरी बुलाना पड़ेगा।" देखिए, यह है मिनट-मिनट का मोल।

बादशाह भी डाकू !

महान् सिकंदर के दरबार में एक व्यक्ति अपराधी के रूप में उपस्थित किया गया। उसके ऊपर यह आरोप था कि वह डाकू है और उसने कितनी ही बार बड़े-बड़े राजाओं, सेठों और जागीरदारों के खजानों पर हाथ साफ किया है।

जब उससे महान् सिकंदर ने जवाब तलब किया तो उसने बड़े ही निर्भीक भाव से कहा—"जो काम तुम करते हो, वही मैं भी करता हूँ। तुम और मैं दोनों भाई-भाई ही तो हैं, क्योंकि तुम्हारा और मेरा पेशा एक है। तुम में और मुझ में अन्तर केवल इतना ही है कि तुम बड़े-बड़े देशों को उजाड़ते हो, गाँव-पर-गाँव, नगर-पर-नगर, प्रान्त-पर-प्रान्त और राज्य-पर-राज्य मौत के घाट उतारते हो, निरपराध जनता की हत्या करते हो और उसका धन लूटते हो, परन्तु मैं तुम्हारे जैसे लुटेरों के खज़ानों पर हाथ मारता हूँ और गरीबों को बाँट देता हूँ। इसलिए मुझ से पहले तुम्हारा विचार होना चाहिए। मैं छोटा डाकू हूँ और तुम संसार के बड़े डाकू हो।"

डाकू के उत्तर में कुछ सचाई तो है ?

गुरु की अन्तिम सीख

माघ वदि नवमी का दिन था। महाराष्ट्र के महान् सन्त समर्थ गुरु रामदास स्वर्गारोहण की तैयारी में थे। आस-पास शिष्यों का जमघट लगा था। ज्यों ही अन्तिम क्षण आया, सब के सब शिष्य रोने लगे। इस पर समर्थ ने कहा कि— "क्या इतने दिनों तक तुम लोगों ने मेरे साथ रह कर रोना ही सीखा है?" शिष्यों ने कहा—"भगवन्! हमें दुःख है, कि यह सगुण मूर्ति हम लोगों के सामने से चली जा रही है। अब हम सत्य की जिज्ञासा के लिये किस के साथ बात-चीत करेंगे?"

समर्थ ने उत्तर दिया—"सदा के लिए कौन गुरु जीवित रहता है? गुरु चला जाता है, उसके विचार रह जाते हैं। अस्तु, मेरे बाद जो लोग मुझ से बात-चीत करना चाहें, वे मेरा 'दास-बोध' नामक ग्रन्थ पढ़ सकते हैं।"

क्या मैं पालिश अच्छी नहीं करता था ?

इंग्लैण्ड के हाउस ऑफ़ कॉमन्स में कभी-कभी बड़ी ही गरमागरम बहस हो जाया करती है, और इस कारण सदस्यों में काफ़ी तू-तू मैं-मैं शुरू हो जाती है। एक बार एक उच्च कुलीन सदस्य ने, इसी प्रकार के किसी उग्र वादविवाद के प्रसंग पर अपने प्रतिद्वन्द्वी से रुष्ट होकर कहा—"मुझे याद है, एक समय तुम मेरे पिता के जूतों पर पालिश किया करते थे।"

प्रतिद्वन्द्वी सदस्य मूल में बड़े ही ग़रीब घराने का था, किन्तु था प्रारम्भ से ही कर्त्तव्यनिष्ठ, स्वावलम्बी वीर! उसने बड़े ही नम्रभाव से हज़ारों आदमियों के सामने कहा—"आपका कहना ठीक है। परन्तु बताइये, क्या मैं अच्छी तरह से पालिश नहीं करता था?"

किसी छोटे काम के करने में शर्म नहीं है। शर्म है उसे अच्छी तरह से योग्यतापूर्वक न करने में। मनुष्य को अपने काम के प्रति वफ़ादार होना चाहिये, इसी में उसका गौरव है।



जीत निश्चय ही हमारी होगी

अँग्रेजों की ओर से मिश्र में नील नदी का युद्ध लड़ा जाने वाला था। महान् सेना नायक नेलसन ने अपने अधीनस्थ सेनाधिकारियों के सामने लड़ाई का नकशा पेश किया। कप्तान वेरी उसे देखकर हर्षित हो उठा और बोला—"यदि हमारी जीत हो गई तो दुनिया चकित होकर क्या कहेगी?"

नेलसन चुप न रह सके। वह बोल उठे—"यदि के लिये कोई स्थान नहीं है, जीत निश्चय ही हमारी होगी। हाँ, हमारी विजय की कहानी कहने वाला कोई बचेगा या नहीं, वह प्रश्न दूसरा है।"

थोड़ी देर बातचीत करने के बाद कप्तानगण जब जाने लगे, तब फिर नेलसन ने अपनी दृढ़ निश्चया वज्रवाणी में कहा—"कल इस समय के पहले ही या तो मुझे विजय प्राप्त हो जायगी, या मेरे लिये वेस्टमिन्स्टर के गिर्जे मे कब्र तैयार हो जायगी।"

आखिर युद्ध मे विजय नेलसन की ही हुई। मनुष्य सब कुछ कर सकता है, यदि उसमे अपने कार्य के अनुरूप दृढ़ निश्चय भी हो।

राजस्थान की वीरांगना

जोधपुर नरेश यशवन्तसिंह राठौर हिन्दुस्तान की राजगद्दी पर शाहजहाँ के बाद दाराशिकोह को बैठाना चाहते थे। इधर औरंगजेब ने बड़ी धूर्तता का खेल खेल कर शाहजहाँ को तो क़ैद में डाल दिया और स्वयं गद्दी पर बैठ गया।

महाराजा यशवन्तसिंह का इस प्रश्न को लेकर औरंगजेब के साथ भयंकर युद्ध हुआ। किन्तु इस युद्ध में राजपूत सेना को बहुत हानि उठानी पड़ी और वे कुछ थोड़े से बचे हुए राजपूतों को साथ लेकर जोधपुर चले आए।

परन्तु जब महाराजा की रानी जसवंतदे हाड़ी को यह मालुम हुआ कि पतिदेव युद्ध से भाग कर यहाँ आ रहे हैं तो उसने क़िले के दरवाजे बंद करवादिए और महाराजा को कहला दिया कि "हमारे पति वीर राठौर जसवन्तसिंह भूल कर भी कभी रणभूमि में पीठ दिखा कर किले की ओर पैर नहीं रख सकते। ज्ञात होता है कि यह कोई दूसरा ही आदमी है। महाराजा का वेप पहन कर हमें धोखा देने आया है। और यदि आप सचमुच ही मेरे पति हों, तब भी भाग कर आने वाले पति का मुँह मैं नहीं देखना चाहती।

इन शब्दों ने महाराजा पर जादू का-सा असर किया। वे उलटे पैरों किले के दरवाजे से लौट पड़े। उन्होंने चुपचाप एक अच्छी सेना तैयार की और मुगलों को परास्त किया।

विजयी पति जब जोधपुर लौटे तो वीर पत्नी ने वह प्रेम और उल्लास से भरा शानदार स्वागत किया, जो इतिहास में अजर अमर होगया।

गधे की लात

मिर्जा गालिब हिन्दुस्तान के बड़े ही मशहूर शायर हो चुके हैं। आप बहुत ही विनम्र साधु प्रकृति के साहित्यकार थे। तत्कालीन मौलवी अमीमुद्दीन, गालिब साहब की प्रतिष्ठा से चिढ़ते थे, अतः उन्होंने उनके खिलाफ एक बहुत ही अभद्र पुस्तक लिखी।

परन्तु, गालिब साहब ने, उसका कोई उत्तर नहीं दिया। एक बार उनके एक प्रिय शिष्य ने उनसे कहा—"हजरत! आप ने उसका कोई उत्तर नहीं लिखा। नालायक गधे को ऐसा मुँह तोड़ उत्तर देना चाहिये कि वह भी जिन्दगी भर याद रक्खे"।

गालिब साहब ने शिष्य के आग्रह का बड़ा ही सुन्दर उत्तर दिया। उन्होंने कहा, "अगर कोई गधा तुम्हें लात मारे तो क्या तुम भी उसके लात मारोगे?"

महाराजा रणजीत सिंह का तेज

पंजाब के सम्राट् महाराजा रणजीतसिंह बाईं आँख से काने थे और मुँह पर चेचक के इतने अधिक दाग़ थे कि वह बिल्कुल बदसूरत होगये थे। परन्तु इतने पर भी मुखमण्डल पर वीरता और तेज की ऐसी अनोखी कान्ति झलकती थी कि किसी का साहस उनकी ओर देखने का न होता था।

कहते हैं कि तत्कालीन अंग्रेज गवर्नर ने उनके नौकर से एक बार पूछा कि "महाराज किस आँख से काने हैं ?" इस पर नौकर ने उत्तर दिया—"साहब ! उनके दिव्य तेज के सामने देखने की किसी की हिम्मत ही नहीं होती, फिर मैं कैसे बताऊँ कि वे किस आँख से काने हैं ?"

गवर्नर इस बात को सुनकर दंग रह गया।

शिष्टाचार को भी भूल जाऊँ ?

जब चौदहवाँ क्लेमेन्ट पोप हुआ तो एक दिन बहुत से प्रतिनिधियों ने आकर उनका अभिवादन किया। अभिवादन के उत्तर में पोप ने भी अपनी ओर से अभिवादन किया।

इस पर पोप के मुख्य कार्य संचालक ने कहा—"हुजूर आप पोप हैं, अतः आपको उनके अभिवादन का उत्तर अभिवादन में नहीं देना चाहिये था।"

पोप ने कहा—"क्षमा कीजिए, मुझे अभी पोप हुए इतना समय नहीं हुआ कि मैं अपने शिष्टाचार को भी भूल जाऊँ।"

उचित शिष्टाचार के पालन में बड़ों का बड़प्पन घटता नहीं, अपितु बढ़ता है।

बोझ का सम्मान कीजिए

एक समय की बात है कि फ्रांस के भूतपूर्व सम्राट नेपोलियन सेन्ट हेलेना में अपने एक साथी के साथ कहीं जा रहे थे। सामने से एक मजदूर सिर पर बोझा उठाए जा रहा था।

नेपोलियन का साथी सीधा चलता रहा, वह अपनी राह नहीं छोड़ना चाहता था। यह देख कर सम्राट ने कहा—"कृपया बोझ का सम्मान कीजिए। रास्ते से एक ओर हट जाइए।"

तुम्हारा क़िला कहाँ है ?

मनुष्य का वास्तविक बल उसके पास ही रहता है, अन्यत्र नहीं। कहा जाता है, कालोना के विख्यात सैनिक स्टीफन को जब उसके शत्रुओं ने क़ैद कर लिया, तब उससे पूछा—"बताओ, तुम्हारा क़िला कहाँ है ?"

वीर सिपाही ने बड़े गर्व के साथ हृदय पर हाथ रखते हुये उत्तर दिया "यहाँ।"

ऊँचा कुल नहीं, ऊँचा चरित्र चाहिए

एक बार महान् दार्शनिक सिसेरो को एक उच्चकुलीन घमंडी सरदार ने कहा—"तुम तो नीच कुल के हो। हमारी तुम्हारी क्या बराबरी ?"

रोम के उस महान् प्रवक्ता ने नम्रता से जवाब दिया—"मेरे कुल की कुलीनता का आरंभ मुझसे होता है, आपके कुल की कुलीनता का अन्त आप से होता है।"

कुल के ऊँचेपन का क्या मूल्य है, मूल्य है मनुष्य के अपने चरित्र-बल का। ऊँचा कुल नहीं, ऊँचा चरित्र चाहिए।

महाकवि धनपाल

महाकवि धनपाल जैन श्रावक थे। बड़े ही दयालु और शान्त। एक दिन राजा भोज बड़े आग्रह के साथ उन्हें शिकार खेलने के लिए साथ ले गया। राजा ने एक भागते हुए हरिण को बाण से बींधा और वह भूमि पर गिरते ही प्राणान्त वेदना से छट-पटाने लगा। इस प्रसंग पर साथ के दूसरे कवियों ने राजा की प्रशंसा मे कविताएं पढ़ीं। किन्तु महाकवि धनपाल चुपचाप खड़े रहे। आखिर राजा ने स्वयं ही प्रसंगोचित वर्णन के लिए धनपाल के मुँह की ओर देखा। महाकवि धनपाल ने राजा को बोध देने की दृष्टि से तत्कालीन प्रसंग का निर्भयता पूर्वक उपयोग करते हुए कहा—

रसातलं यातु तदत्र पौरुषम्,
कुनीतिरेषा शरणोत्यदोषवान्।
निहन्यते यद् बलिनाति दुर्बलो,
हाहा! महाकष्टमराज्यकं जगत्।

—यह पौरुष पाताल में जाए। निर्दोष और शरणागत को मारना, नीति नहीं, कुनीति है। बड़े दुःख की बात है कि बलवान दुर्बल को मारते हैं। संसार में अराजकता किस भयंकर रूप मे छाई हुई है।

राजा ने अपनी यह भर्त्सना सुनी तो अपमान से तिलमिला उठा। अस्तु क्रुद्ध क्रोध के स्वर में कहा—"कविराज यह क्या कहते हो?"

महाकवि धनपाल ने दृढ़ता के स्वर में कहा—

वैरिणोऽपि हि मुच्यन्ते,
प्राणान्ते तृण-भक्षणात्।
तृणाहाराः सदैवैते,
हन्यन्ते पशवः कथम्?

—महाराज! ठीक ही कहता हूँ, इसमें क्या असत्य है? मुँह में घास का तिनका लेने पर जब विरोधी से विरोधी प्राणशत्रु को भी आपके यहाँ छोड़ दिया जाता है, तब ये मूक पशु तो सदा ही घास खाकर जीते हैं। भला इन्हें क्यों मारा जाता है?

राजा भोज के हृदय पर ठीक समय पर सत्योपदेश की करारी चोट पड़ी। राजा के मन में दया का भाव जागा और सदा के लिए शिकार खेलने का त्याग कर दिया।

धनपाल! तुम्हारा काव्यादर्श युग-युगान्तर तक के लिए जीता जागता रहे।

जो है उसी का उपयोग करो

जर्मन सेनापति रोमेल, अपने समय का एक विलक्षण प्रतिभाशाली वीर पुरुष था। गत महायुद्ध में वह अफ्रीका के रणक्षेत्र में अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ रहा था। एक बार ऐसा हुआ कि रेगिस्तान मे उस के पास की युद्ध-सामग्री समाप्त हो गई। और उधर रात में सुसज्जित अंग्रेजी सेना ने उस की सेना पर अचानक आक्रमण कर दिया। रोमेल के संगी-साथी एक दम घबरा उठे। उन्होंने कहा—"हमारे पास कुछ तोपें, तो हैं; परन्तु गोले नहीं है।" रोमेल ने धैर्य पूर्वक कहा—"गोले न सही, धूल तो है, उसी का उपयोग करो।"

रोमेल की आज्ञा होते ही जर्मन सैनिक तोपों में बालू भर-कर बालू के टीलों पर दनादन दागने लगे। और उसने टैंक लारियों को कुछ मीलों के घेरे मे लगातार चक्कर लगाने की आज्ञा भी तुरन्त दी। परिणाम यह हुआ कि तोपों की गड़गड़ाहट सुन कर और अपरम्पार धूल उड़ती देखकर अंग्रेजों ने समझ लिया कि जर्मनों की विशाल सेना युद्ध के लिए आतुर होकर दौड़ी आरही है। वे वायुयानों से भी वास्तविकता की जाँच नहीं कर सके। क्योंकि सारा आकाश धूल से भरा था। आखिर, उन्हें मैदान छोड़ कर भागना ही पड़ा। इसे कहते है, समय-चातुर्य।

जीवित नेता

चीन के प्यूराज्य के युवराज ने एक बार चीनी दार्शनिक च्याङ्-त्सू के पास यह सन्देश भेजा कि वे आकर शासन-कार्य सँभालें।

संदेश-वाहक यह देखकर चकित रह गए कि च्याङ्-त्सू शान्त सरोवर के किनारे पर बैठा मछलियों से खेल रहा है। सन्देश पाकर भी वह टस से मस न हुआ। बल्कि बड़े अलगाव और उपेक्षा भाव से उसने पूछ लिया—"मैंने सुन रक्खा है कि प्यूराज्य में एक पवित्र कछुआ है जिसके मृत शरीर को हज़ारों साल से राज्य-मन्दिर की सुन्दर वेदी पर रखकर उसकी पूजा की जा रही है। हाँ, तो कहो न, इस कछुए को मरकर अपनी पूजा होते देखकर अच्छा लगता या जीवित रह कर कीचड़ में पड़े-पड़े अपनी पूँछ डुलाना?"

"अवश्य ही पूँछ डुलाना,—" सन्देश-वाहक ने झट उत्तर दिया।

तो फिर भाग जाओ यहाँ से", च्याङ्-त्सू कह उठा, "मै भी कीचड़ में अपनी पूँछ डुलाता पड़ा रहूँगा।"

मानवता का सच्चा मंगल इसी में है कि शासन-सत्ता जनता के उन्हीं प्रतिनिधियों के हाथ में हो, जो जीवित हो, जिनमे कर्त्तव्य का स्वर गूँजता हो, जो राज-मद में न फँसें।

दूरदर्शिता !

एक बार की बात है, नेपोलियन युद्ध के मैदान से कुछ ही दूर अपने डेरे में सो रहा था। उसी समय एक अफसर वहाँ गया और उसका कन्धा पकड़ कर जगाते हुए धीरे से कहा—'उठिए, उठिए।'

नेपोलियन ने एक आँख को थोड़ा सा खोलकर देखा और निद्रित अवस्था में ही पूछा—'क्या बात है ?'

अफसर ने नींद में व्याघात डालने के लिए क्षमा माँगते हुए कहा—'शत्रु ने हमारी सेना की बगल पर अचानक हमला कर दिया।'

'हमारी बगल पर !'—नेपोलियन ने कहा। 'अच्छा उस बक्स को खोलिए। उसमें अचानक बगल पर हमला होने पर सामना करने की योजना मिलेगी। उसी के अनुसार काम करो, बस।'

इतना कह कर नेपोलियन अपनी जगह पर फिर पड़ रहा और तत्काल सो गया।

जो व्यक्ति अपने कार्य से सम्बन्ध रखने वाली सभी तरह की संभावनाओं को ध्यान में रखकर पहले से ही सोच रखता है कि किस अवस्था में क्या करना होगा; उसे सहसा परिस्थिति के आजाने पर उसका प्रतिकार सोचने की आवश्यकता नहीं पड़ती, घबराना नहीं पड़ता। मनुष्य को अपने कर्तव्य-क्षेत्र में भविष्य-द्रष्टा होना चाहिए।

कुशासन से बाघ अच्छा !

चीन के महान् सन्त कनफ्यूशियस अपने विराट देश की लम्बी यात्रा कर रहे थे। एक बार एक सूने और भयावने जंगल में उन्होंने एक स्त्री के रोने की आवाज़ सुनी। पास जाकर देखने से पता चला कि उस स्त्री के ससुर, पति और सन्तान को बाघ ने अपना भोजन बना लिया है।

कनफ्यूशियस ने कहा—"तुम कहीं और क्यों नहीं चली जातीं ?" उस स्त्री ने छूटते ही उत्तर दिया—"नहीं, यहाँ और जो हो, अत्याचारी राज्य की हुकूमत नहीं है।"

———

सार तो निकाल लिया

महात्मा गांधी जी एक बार जब लन्दन जा रहे थे, मार्ग में एक अंग्रेज से उनका परिचय हो गया। यह अंग्रेज कुछ बदमिज़ाज था। बात-बात पर गांधीजी को खरी खोटी सुना जाया करता था।

एक दिन उसने एक व्यंग-कविता लिखकर गांधी जी के पास भेजी। महात्माजी ने उस कविता को तो बिना पढ़े ही रद्दी की टोकरी में डाल दिया और उसमें लगी पिन को डिबिया में रख लिया। इस पर उस अंग्रेज ने कहा—"गांधी जी उसमें कुछ सार भी है, पढ़कर तो देखिए।" महात्मा जी ने हँस कर कहा—"सार तो मैंने निकाल कर डिबिया में रख लिया है।"

जीवन के चलचित्र

आदर्श स्वावलम्बन

एक बार डायोजिनीज का गुलाम चुप-चाप कहीं भग गया। डायोजिनीज उसकी परवाह न करके सब काम स्वयं अपने हाथ से करने लगा। उसके एक मित्र ने कहा—"आप क्यों इतना कष्ट सहते हैं? उस गुलाम को ढूँढ़ कर पकड़ लाइए, और उससे काम लीजिए।"

डायोजिनीज ने कहा—"क्या यह मेरे लिए लज्जा और अपमान की बात नहीं होगी कि मेरा सेवक तो मेरे बिना रह सकता है, और मैं उसके बिना अपना काम नहीं चला सकता? मैं दासानुदास नहीं बनूँगा?"

मातृवत् परदारेषु

शिवाजी के जीवन की एक घटना है। एक मुसलमान युवती उन पर मुग्ध होकर एकान्त में प्रणय का हाव-भाव दिखाती हुई बोली—"मुझे आप जैसा एक पुत्र चाहिए।" इसके उत्तर में शिवाजी ने सम्मानपूर्वक कहा—"माँ, तुम मुझे ही आज से अपना पुत्र समझ लो।"

रमणी का मानस-मल धुल गया। उसके हृदय में शिवाजी के प्रति काम-वासना के स्थान पर सात्त्विक प्रेम भर गया। वह लज्जित होकर वहाँ से चली गई।

अपनी सदाचार परायणता और सुशीलता से शिवाजी ने अपने धर्म की ही नहीं, उस युवती के धर्म की भी रक्षा कर दी।

काम की बात चाहिए

अब्राहम लिंकन के शासन काल में अमेरिका में एक नये ढंग की बन्दूक का आविष्कार हुआ। राष्ट्रपति की आज्ञा से इस बात की जाँच के लिए विशेषज्ञों की एक समिति बैठी कि नयी बन्दूक युद्ध के लिए उपयोगी हो सकती है अथवा नहीं? कमेटी ने बड़ी छान-बीन के बाद एक लम्बी-चौड़ी रिपोर्ट तैयार करके राष्ट्रपति लिंकन के पास भेजी। लिंकन ने उसे उठाकर अलग रख दिया। मन्त्रियों ने जब कारण पूछा तो उन्होंने कहा—"इसको आदि से अन्त तक पढ़ने के लिए मुझे नया जीवन चाहिए, यदि मैं किसी को घोड़ा खरीदने का काम सौंपूँ, तो उसे उचित है, कि वह मुझे संक्षेप में गुण दोष बतला दे, न कि यह, उसकी दुम में कितने बाल हैं?"

कमेटियों में प्रायः छोटी-छोटी अनावश्यक बातों की छान-बीन में समय और श्रम का अपव्यय होता है। जब तक उनकी भारी-भरकम रिपोर्ट प्रकाशित होती है, तब तक अवसर हाथ से निकल जाता है। हमारे अधिकारियों को लिंकन की नीति का अनुसरण करना चाहिए।

कवि की अमर वाणी

अजमेर मेरवाड़ा प्रान्त में एक छोटी सी स्टेट अब भी है, जिसका नाम है 'भिणाय।' मुगल काल में वहाँ के राजा कर्मसेन बड़े ही वीर और प्रतापी पुरुष हो चुके हैं

एक बार की बात है कि मुग़ल बादशाह हाथी के हौदे पर बैठे हुए थे और कर्मसिंह बादशाह पर चँवर झल रहे थे। बादशाह की शोभा-यात्रा बाज़ार में से गुजर रही थी कि भारत के राष्ट्रिय आत्माभिमान का अमर गायक एक चारण कवि उधर आ निकला। ज्योंही उसने यह दृश्य देखा तो उसका खून उबलने लगा। दूर से ही राष्ट्र-कवि की वाणी गूँजी :—

> कम्मा उग्गर सेनरा,
> तो जननी बलिहार!
> चँवर न झल्ले शाह पर,
> तूं झल्ले तलवार!!

—'हे उग्रसेन के बेटे कर्मसेन! तेरी माता तुझे जन्म देने के कारण तभी निहाल होगी, जब तू बादशाह पर चँवर झलना छोड़ कर हाथ में तलवार उठाएगा।'

कवि की वाणी हृदय को स्पर्श कर गई। सोया हुआ राष्ट्रिय अभिमान जाग उठा। तुरन्त चँवर फेंक, हाथ में तलवार लेकर, हाथी के हौदे से नीचे कूद पड़ा। अजमेर का कर्मसेन जननी जन्मभूमि पर बलिहार हो गया। राजस्थान का वह अज्ञात सरस्वती पुत्र पता नहीं आज कहाँ है, किन्तु उसका यह दोहा आज भी अजर अमर है।

विद्या और विनय की सम्पत्ति

मिश्र के बादशाह ने रोम के बादशाह के पास दूत भेज कर कहलवाया कि—"अब हम वृद्ध हो गए हैं। अतः हमें अपने वंश की प्रतिष्ठा और ऐश्वर्य की सुरक्षा का कुछ-न-कुछ उपाय कर लेना चाहिये। अस्तु, मैंने तो अपनी संतान के लिए महल खज़ाना, उपवन आदि का सुन्दर प्रबन्ध कर दिया है। श्रीमान् ने इस दिशा में क्या किया है, मालूम होना चाहिए।"

रोम के बादशाह ने हँस कर उत्तर दिया—"भाई! मैंने तो महल खज़ाना आदि का कोई प्रबन्ध नहीं किया है। हाँ, अपने लड़कों को विद्या और विनय से अवश्य विभूषित कर दिया है और उन्हें शील तथा सदाचार का अक्षय कोष भी अर्पण कर दिया है। संसार में और सब कुछ नाशवान है, क्षण-भंगुर है। विद्या और विनय की संपत्ति चाँदी, सोना और रत्नाभरण से भी उत्तम है।"

मिश्र के बादशाह ने जब यह उत्तर सुना तो कहा—"वस्तुतः रोम के बादशाह ने ही अपने वंश की प्रतिष्ठा और ऐश्वर्य की सुरक्षा का सुन्दर प्रबंध किया है।"

———

Sayamputhe make great to India

कड़ी मेहनत दूर दृष्टी पक्का इरादा
अनुशासन ही देश को महान बनाता है

औरंगजेब की हृदय-हीनता

मुग़ल सम्राट औरंगजेब बड़ा ही कट्टरपंथी मुसलमान था। इस्लाम-धर्म में गाना-बजाना मना है, अत. जब वह बादशाह हुआ तो उसने शाही फ़रमान निकाल कर गाना-बजाना बिल्कुल बन्द कर दिया।

गवैये भूखों मरने लगे। उन्होंने एक सभा में विचार-विमर्श किया और उसके निर्णय के अनुसार एक दिन जनाजा उठाये हुए रोते-पीटते बादशाह के महल के नीचे से निकले।

बादशाह ने झरोखे में से झाँक कर देखा और पूछा—"क्यों क्या बात है? रोते क्यों हो? यह कौन मर गया है?"

गायकों ने कहा—"हुजूर! गान-विद्या मर गई है, उसे दफ़नाने जा रहे हैं।" हृदय-हीन औरंगजेब ने कहा—"बहुत अच्छा हुआ। जरा गहरा गढ़ा खोद कर दफ़न करना, ताकि फिर कभी निकल कर बाहर न आ सके।"



स्वाभिमान की रक्षा

एक बार स्वाभिमानी डायोजिनीज को यूनान के अत्याचारी अधिकारियों ने पकड़ कर बिक्री के लिये गुलामों के बाज़ार में बैठा दिया। बेचने वालों ने उससे पूछा कि "तुम कौन-सा काम अच्छी तरह कर सकते हो? बता दो, जिससे तुम्हारी विशेषताओं की घोषणा करके उपयुक्त ग्राहक खोजा जाय।" डायोजिनीज ने पूर्ण आत्म-विश्वास के साथ घोषणा करने वाले से कहा—"मैं अच्छा शासन कर सकता हूँ। घोषित करो कि किसी को स्वामी की आवश्यकता हो, तो वह मुझे ले सकता है।"

वास्तव में मनुष्य का मान-मर्दन तभी होता है, जब वह भय या स्वार्थ-वश स्वयं अपने को तुच्छ समझने लगता है। आत्म-हीनता पतन की पहली सीढ़ी है। भारतीय मनीषियों का मत है कि संसार में दूसरों के सामने छोटा न बनकर सम्मान-पूर्वक मर जाना अच्छा है, परन्तु अपमानयुक्त अमरत्व-लाभ भी श्रेयस्कर नहीं है—

"पंचत्व मेव हि वरं लोके लाघव वर्जितम्।
नामरत्वमपि श्रेयो लाघवेन समन्वितम्॥"

—स्कन्द पुराण

शान्तचित्त रखने का अभ्यास

यूनान में डायोजिनीज नामक एक प्रसिद्ध तत्त्व-वेत्ता हो गया है। वह प्रतिदिन एक पत्थर की मूर्ति के सामने कुछ देर तक भीख माँगता था। एक दिन उसके एक मित्र ने उससे इस निरर्थक कार्य का रहस्य पूछा। डायोजिनीज ने कहा - "मैं इस से भीख माँग कर किसी से कुछ न मिलने पर शान्तचित्त रखने का अभ्यास कर रहा हूँ।"

चित्त-वृत्तियों का सयंम इच्छा मात्र अथवा कोरे ज्ञान से नहीं, निरन्तर अभ्यास से होता है।

पर-निन्दा की उपेक्षा

यूनान के सुप्रसिद्ध मनीषी अरस्तू ने एक दिन किसी से कहा कि अमुक व्यक्ति ने आपकी अनुपस्थिति में आपको गाली दी है। अरस्तू ने हँस कर कहा—"वह मूर्ख चाहे तो मेरी अनुपस्थिति में मुझे पीट भी सकता है।"

पीठ पीछे होने वाली निन्दा की ओर ध्यान देना व्यर्थ है।

पन्ना धाय की कर्तव्य-निष्ठा

पन्ना महाराणा साँगा के सपूत महाराणा उदयसिंह की धाय थी। वह जानती थी कि वनवीर स्वमार्ग के कण्टक, गद्दी के न्याय-संगत अधिकारी उदयसिंह की हत्या किए विना नहीं रहेगा। पन्ना ने शिशु उदयसिंह की रक्षा के लिए उसे टोकरे में लिटा, पत्तों से ढक बाहर भेज दिया।

इतना करने के वाद उस ने अपने पुत्र को राजकुमार के झूले में लिटाया ही था कि तलवार नंगी लिए वनवीर आ धमका वह बोला, उदयसिंह कहाँ है ? पन्ना के होंठ कुछ हिले, पर जिह्वा ने साथ न दिया। केवल काँपती हुई अँगुली ने पालने की ओर संकेत कर दिया। वनवीर बिजली की तरह उधर बढ़ा और एक ही वार में बालक प्रेतपति की पुरी में जा पहुँचा।

पन्ने ! तू धन्य थी और धन्य थी तेरी स्वामी-भक्ति ! तू ने स्वामि-भक्ति के पवित्र पथ में, अपने हाथ से, अपने कलेजे के टुकड़े की बलि दे दी ! इसे कहते हैं—कर्तव्य-निष्ठा !

सुरक्षित कोश

महाकवि नरहरि, सम्राट् अकबर के दरबार में ख्याति प्राप्त कवि थे। उन्होंने दिल्ली से एक बार अपने पुत्र हरिनाथ के पास विपुल धनराशि भेजी। हरिनाथ ने वह सारा धन गरीब ब्राह्मणों को दान कर दिया।

कुछ समय बाद जब नरहरि घर लौटे, तो पूछा—"बेटा, मेरा भेजा हुआ धन तुमने कहाँ रखा है?" हरिनाथ ने कहा—पिताजी, आप निश्चिन्त रहें, मैंने उसे पूर्णतया सुरक्षित कोप में जमा करा दिया है, सायंकाल दिखाऊंगा।" नरहरि चुप हो गए।

इधर हरिनाथ ने उन सब ब्राह्मणों से कहला भेजा कि आप लोग सायंकाल वह सब द्रव्य, वस्त्र आदि, जो मैंने आपको दान किए हैं, लेकर आवें। सायंकाल ब्राह्मणों से अपनी गढ़ी पर उपस्थित होने पर हरिनाथ ने नरहरि से कहा—"पिताजी, चलिए, अपनी संपत्ति देख लीजिये। मैंने उसे कितने अच्छे सुरक्षित कोश में जमा कर रखा है?"

नरहरि ने यह देखा तो अवाक् रह गए। ब्राह्मणों को विदा करके उन्होंने हरिनाथ से कहा—"बेटा, किया तो तूने खूब। जन्म-जन्मान्तर के लिए संपत्ति को सुरक्षित रखने का इससे बढ़कर और कोई सुन्दर एवं सुरक्षित तरीका नहीं हो सकता, परन्तु यह सब यदि अपनी कमाई से करते, तो अधिक ठीक होता।

कहा जाता है, पिता की इस अन्तिम उक्ति से तेजस्वी पुत्र के हृदय को चोट लगी। वह घर छोड़कर चला गया। उसने अपनी विद्वत्ता से लाखों कमाए और दान किए।

सत्य कहाँ मिलता है ?

एक बार अहमदाबाद साबरमती आश्रम में बंबई से एक अँग्रेज परिवार गांधीजी के दर्शनों के लिए आया। उसमें से एक युवती महिला ने जिज्ञासा भाव से पूछा—Mahatma ji Where can I find the truth ?" ह्वेयर केन आई फाइन्ड दि ट्रुथ ?" महात्मा जी, मैं सत्य कहाँ पा सकती हूँ ? महात्माजी ने उत्तर दिया—"No where " अर्थात् कहीं नहीं। उस युवती का चेहरा उतर गया। कुछ और बातचीत करने के बाद उस महिला ने अपना पाकेट बुक दिया और कहा—"कृपया इसमें आप अपने हस्ताक्षर कर दीजिए।"

महात्माजी ने उस पाकेट-बुक में लिखा—"One can find the truth in one's own heart" अर्थात् "वन केन फाइन्ड दि ट्रुथ इन वन्स ओन हार्ट" अर्थात् सत्य अपने ही हृदय में मिल सकता है।

राजा का गन्दा धन

महान् सिकंदर की राजधानी में डायोजिनीज नामक एक महान् दार्शनिक सन्त रहता था। सिकन्दर ने उसे दरबार में बुलाया, परन्तु उसने आने से स्पष्ट इन्कार कर दिया। आखिर जब वह न आया तो सिकन्दर स्वयं ही उसके यहाँ पहुँचे। सम्राट घोड़े से उतर कर ज्यों ही अन्दर आँगन में पहुँचे तो क्या देखा कि एक दरिद्र-सा मनुष्य झोंपड़े के आगे धूप में बैठा हुआ सिर नीचा किए कुछ सोच रहा है। सिकन्दर के अनुचरों ने कहा—'सम्राट! यही डायोजिनीज है।'

हाँ, तो सिकन्दर स्वयं सन्त डायोजिनीज के निकट गए और खड़े होकर अपना परिचय देने लगे। परन्तु डायोजिनीज ने कुछ भी आदर न किया। वह ज्यों-का-त्यों बैठा रहा। जब सम्राट ने लंबी-चौड़ी बात शुरू की, तो कहा कि—"हाँ, मैं जान गया हूँ कि आप सिकन्दर हैं। परन्तु आप जरा उधर खड़े हो जाइए, इधर धूप को रोक कर खड़े न हों।"

सिकन्दर ने जब उसे धन देने को कहा तो बड़ा करारा उत्तर मिला। उसने कहा—"मेरे पास यह झोंपड़ा और थोड़ा बहुत जो कुछ है, वही बहुत है। मैं अपनी पवित्र संपत्ति में राजा का गन्दा धन कैसे मिलाऊँ?



काम का ढंग चाहिए

अमेरिका के प्रख्यात लेखक और विचारक एमर्सन के पिता भी बड़े ही अध्ययनशील साहित्यिक थे। एक दिन रात को पिता और पुत्र साहित्य-रचना में मग्न थे, इतने में उनका बछड़ा गोशाला से रस्सी तुड़ा कर बाहर निकल गया। दोनों उसे पकड़ कर अन्दर ले जाने लगे; परन्तु वह ऐसा अड़ गया कि एक कदम भी आगे नहीं बढ़ा। आगे से उसके दोनों कान पकड़ कर बेटा खींचता था और पीछे से बाप ठेलता था। साहित्यिकों के लिए उसे ले जाकर बाँधना एक कठिन समस्या थी। उसी समय बाहर से घर की दासी आई। उसने दोनों को झंझट से छुटकारा देकर उस बछड़े को थपथपाया और आसानी से ले जाकर बाँध दिया।

एमर्सन को उस दिन से विश्वास हो गया कि कोई भी काम, वह चाहे छोटा हो या बड़ा, उसके करने का एक ढंग होता है और वही आदमी अपने कार्य को सुचारु रूप से कर सकता है, जो उसको करने का ठीक उपाय जानता हो। कार्य-कुशल व्यक्ति ही उपयोगी होता है, कोरा परिश्रमी नहीं।

महत्ता का मानदण्ड

फ्रांस ने पूरा प्रयत्न किया, पर वह हॉलैण्ड को पराजित नहीं कर सका। झुंझला कर एक दिन चौदहवें लुई ने अपने मंत्री कालवर्ट से कहा—"हम इतने बड़े धन-जन सम्पन्न देश के बादशाह हैं, पर उस ज़रा से देश को नहीं हरा सके।" नम्रता से कालवर्ट ने कहा—

"महाराज! किसी देश की महत्ता उस की लम्बाई चौड़ाई आदि पर आश्रित नहीं होती, बल्कि वहाँ की जनता के ऊँचे और उज्ज्वल चरित्र पर निर्भर होती है।"

इधर-उधर की सुनी-सुनाई में से

अपने को भी गिनिए

एक बार किसी दूर देहाती गाँव के दश मित्र आपस में मिले, और मिल कर देशाटन को निकले। मार्ग में उनको एक नदी मिली, वह बड़ी कठिनाई से तैर कर पार की गई।

नदी को पार करने के बाद तट पर खड़े होकर उन्होंने विचार किया कि—"अरे अपने दशों साथियों को सँभाल तो लो, नदी में कोई डूब न गया हो ?"

एक ने जल्दी में अपने मित्रों की गिनती की। वह अपने को गिनना भूल कर शेष नौ को गिन गया और हैरान होकर कहने लगा कि—"ग़जब हो गया, एक मित्र डूब गया।"

इस पर दूसरे मित्र ने कहा—"ठहरो, घबराओ नहीं। मैं ठीक तरह गिनता हूँ।" किन्तु यह भी अपने को गिनना भूल कर शेष नौ को गिन गया। इस प्रकार प्रत्येक ने बारी बारी से गिनती की, और प्रत्येक ने ही अपने को छोड़ कर शेष नौ को गिना।

सब के सब साथी आवश्यकता से अधिक बुद्धिमान् थे। अतः गिन-गिन कर हैरान हो गए, परन्तु उन्हें अपना दशवाँ साथी न मिला। अब यह निश्चित हो गया कि दशवाँ साथी नदी में डूब गया है, मिले तो कैसे मिले ?

जब कि ये सब नदी तट पर खड़े हुए अपने साथी के शोक में रो रहे थे, तो एक दयालु सज्जन वहाँ आ गए। उन्होंने रोने का कारण पूछा।

उन लोगों ने रोते हुए अपनी सब व्यथा कह सुनाई। आगन्तुक सज्जन ने कहा—"मेरे सामने गिनो, देखूँ तो सही कैसे गिनते हो?" उनमें से एक ने फिर गिनती की। वह पहले की भाँति अपने को छोड़ कर शेष नौ को गिन गया और मूर्त्तिवत् अचल खड़ा हो गया।

इस पर उक्त सज्जन ने कहा—"घबराओ मत। दशवाँ मौजूद है।" गिनती करने वाले ने बेचैनी से पूछा—"दशवाँ कहाँ है?" आगन्तुक महोदय ने तत्काल गिनती करने वाले का हाथ पकड़ कर कहा—"दशवाँ तू है।" यह उत्तर सुना तो सब का भ्रम दूर हो गया, सब हर्ष से नाचने लगे।

यह कहानी पढ़ कर पाठक हँसेंगे। परन्तु हँसिए नहीं, यही भारतीय तत्त्वज्ञान का अमर सिद्धान्त है। दूसरे सब लोग दूसरों को तो गिनते हैं, अपने को नहीं। किन्तु भारतीय चिन्तन अपने को भी गिनना सिखाता है। आत्मा की गिनती किए बिना जड़ पदार्थों की गणना वस्तुतः हास्यास्पद है। इस भ्रान्ति को दूर करने का साधन एक मात्र ज्ञान है, और कुछ नहीं। यदि वे भुलक्कड़ साथी ज्ञान के साधन को छोड़ कर दशम की प्राप्ति के लिए कुछ भी प्रयत्न करते, नदी में गोता लगाते, देश-देशान्तरों से तैराकों को बुलाते, तब क्या उनका क्लेश दूर हो सकता था? कभी नहीं।

भगवान् की दया !

चौधरी मक्खूलाल जी गाँव के नंबरदार और बड़े खुश-मिजाज आदमी थे। एक दिन चौधरी जी का घोड़ा उस समय गुम हो गया, जब आप को मंडी के मेले में जाना था, इधर-उधर की बहुत खोज-बीन की, पर कुछ पता नहीं चला। सारे घर में उदासी छाई हुई थी। परन्तु चौधरी जी को एकाएक क्या उमंग आई कि खिल-खिला कर हँसने लगे।

चौधराइन ने जब पूछा, "आप क्यों हँसते हैं ?" तो आप बोले "भगवान की दया पर हंसता हूँ।" चौधराइन ने जल कर कहा: इसमें भगवान की क्या बात है ? घोड़ा गुम हो जाने से हमारी तो हानि हुई और आप भगवान की दया पर हँसते हैं ?"

चौधरी जी ने हँसते हुए कहा: "तू तो पगली है। कुछ समझ ही नहीं सकती। भगवान की दया इस लिए कि गनीमत है, वह घोड़ा अकेला ही खोया गया। यदि मैं भी उस पर चढ़ा होता तो मैं भी खो जाता। भगवान ने ही मेरी रक्षा की। उसी की दया है, नहीं तो तू भी कहीं की न रहती।"

हम भी तो ऐसे ही हैं ?

एक सेठ ने अपने दास से कहा—'गरमी लग रही है, ज़रा खिड़की तो खोल दे।' पर उसने खिड़की ज़रा और ज़ोर से बन्द कर दी। थोड़ी देर बाद सेठ ने पीने के लिए पानी माँगा। परन्तु वह सेठ जी की पगड़ी उठा लाया। दास कुछ आवश्यकता से अधिक बुद्धिमान था।

सेठ क्रोध में भर गया। पास में रखी हुई छड़ी को उठाकर दास को मारने लगा। दास के रोने की आवाज़ को सुनकर अन्दर से सेठानी दौड़ी आई, वह बहुत ही समझदार और दयालु स्वभाव की नारी थी। दास को पीटने से बचाकर सेठ से कहने लगी—"पराये बच्चे को इस तरह मारा करते हैं क्या ?"

"ज़रा विचारो तो सही—हम भी तो अपने परमपिता परमात्मा के आदेशों का पालन प्रायः इस गँवार दास की ही तरह किया करते हैं न ? प्रभु का आदेश है सत्य बोलो, हम बोलते हैं झूठ। प्रभु की आज्ञा है दया करो, हम करते हैं क्रूरता और निर्दयता। अब बताइए तुम में और इस गँवार में अन्तर ही क्या रहा ?"

खान्दानी चोर

एक लड़के को किसी दुकानदार के यहाँ से खिलौने की वस्तुएँ चुराने की आदत पड़ गई थी। वह कई बार इस अपराध में पकड़ा गया और दण्ड भोगता रहा।

इस लड़के को बार-बार अपराधी के रूप में सामने आते देख कर दयालु न्यायाधीश का हृदय ऊब गया। उसने अब की बार लड़के के पिता को बुला भेजा। जब पिता हाज़िर हुआ तो हाकिम ने कहा—"तुम अपने बेटे को इस प्रकार क्यों नहीं समझाते कि जिससे जेल जाने की नौबत न आए।"

पिता ने उत्तर दिया—"हुज़ूर! मैं तो बहुत समझाता हूँ कि तू इतनी सावधानी से काम कर कि पकड़ा न जा सके। किन्तु यह मूर्ख न जाने क्यों चूक जाता है, जो बार-बार पकड़ में आ जाता है। अभी बच्चा है, काम करते-करते अपने फन में होशियार हो जायगा।"

हाकिम समझ गया कि यह खान्दानी चोर है। सीधे ढंग से जल्दी ही यह पुरानी वंश परम्परागत आदत छुटने वाली नहीं है। इसके लिये तो कठोर कदम उठाने पड़ेंगे।

अक्ल और ईमान

"मैं अपना जीवन बिताने के लिए संसार में जा रहा हूँ, मेरे प्रभु ! मुझे कोई हिदायत दीजिए, जिससे मैं वहाँ सफलता पासकूँ ।" मनुष्य ने ईश्वर से कहा ।

ईश्वर ने प्रसन्न होकर कहा—"मेरे बेटे, मैं तुम्हें जीवन की दो विभूतियाँ दे रहा हूँ । संसार में एक को अक्ल और दूसरी को ईमान कहते हैं । मेरी हिदायत है कि अक्ल को हमेशा खूब खर्च करना, और ईमान को हमेशा महफूज रखना ।"

मनुष्य ने सिर झुकाया और दोनों हाथ आगे बढ़ा दिए । ईश्वर ने उसके बाएँ हाथ में अक्ल और दाएँ हाथ पर ईमान रख दिया और वह अपनी राह चला । भूल मनुष्य का स्वभाव है, यहाँ भी वह भूल गया कि उसने अक्ल की जेब में ईमान और ईमान की जेब में अक्ल रख ली ।

संसार में अब वह दोनों हाथों ईमान लुटा रहा है और अक्ल को उँगली भी नहीं लगाता । उसे अपने ईश्वर की हिदायत याद है कि अक्ल हमेशा खब खर्च करने और ईमान महफूज रखने की चीज है ।

लोक-मत

एक चित्रकार ने अपनी कला के विषय में लोकमत जानने के लिए ठीक चौराहे पर चित्र लगा दिया और उसके एक किनारे पर लिख दिया कि "जिसे जो बुरा या भद्दा लगे, वहीं निशान मार दे।"

शाम को जब चित्रकार ने आकर देखा तो हैरान कि यह क्या हुआ? तमाम चित्र में निशानों की इतनी भरमार कि चित्र ही ग़ायब। उसने बुरा खोजना चाहा, शायद इसी लिए ऐसा हुआ!

चित्रकार ने कुछ गहराई में बैठ कर विचार किया और अगले दिन वही चित्र दुबारा साफ़ कर उसी स्थान पर इस प्रार्थना के साथ रखा कि "जिसे जो अच्छा लगे, उस पर निशान मार दे।"

किन्तु अब की बार भी चित्र की वही दशा हुई, जो पहले दिन हुई थी। तमाम चित्र में अच्छाई-सूचक निशानों की इतनी भरमार कि चित्र ही ग़ायब। उसने अब की बार अच्छा खोजना चाहा शायद इसलिए ऐसा हुआ!

वस्तुस्थिति के अन्तस्तल में जाकर मालूम करना चाहें कि ऐसा क्यों हुआ? तो उत्तर मिलेगा कि लोकमत सुविचारित, सुनिर्णीत, सुगठित और सुव्यवस्थित नहीं था। राह चलते जिसे जो बुरा या अच्छा सूझा, उसने वही किया। यदि वही निर्णय सोच-विचार कर किया जाता तो संभव है बुरे निशानों पर अच्छे के और अच्छे निशानों पर बुरे के निशान लगते।

खाँड़ के साधू

एक सेठजी, अपने परिवार में जितने प्राणी होते, उन सबके हर एक के नाम पर एक-एक संत या ब्राह्मण को भोजन कराने के बाद स्वयं भोजन किया करते थे। नगर के ब्राह्मणों को इस बात का पता था, इसलिए प्रतिदिन कुछ ब्राह्मण इन के घर चक्कर लगा जाते, और प्रतिदिन पाँच ब्राह्मण भोजन कर जाते।

एक दिन ऐसा हुआ कि सेठजी के यहाँ कोई ब्राह्मण भोजन पाने नहीं पहुँचा। क्योंकि नगर में नगर सेठ ने ब्रह्म-भोज दिया था। वहाँ पर भरपूर मिष्टान्न भोजन और दक्षिणा की आशा थी, सब ब्राह्मण नगर सेठ के यहाँ जारहे थे। इस लिए अतिथि-भक्त सेठजी ने दुखी होकर अन्त में उपाय निकाला कि व्रत निभाना आवश्यक है, अतः बाज़ार से पाँच खाँड़ के साधू मोल ले आए। उन्हीं को भोग लगाना निश्चय किया।

भोग लगाने के लिए पाँच थालियाँ तैयार कीं और खाँड़ के साधुओं के आगे रखवा दी गईं। सेठजी स्नान करने कुँए पर जारहे थे कि संयोग से पाँच साधू भी सामने से आ निकले। इन से भोजन पाने की सेठजी ने प्रार्थना की तो साधुओं ने मान ली। साधुओं को बैठक में बैठा कर सेठजी स्नान करने चले गए।

इधर चौके में खाँड़ के साधुओं को रक्खे देख कर सेठजी के एक छोटे नादान बालक ने, जो भोजन में बहुत देर होने के

कारण भूख से व्याकुल हो रहा था, ऊँचे स्वर से अपनी तोतली भाषा में चिल्ला कर कहा—"माँ, बड़ी देर होगई है आज। मैं भूखा मर रहा हूँ। मुझे इन पाँच साधुओं में से एक साधू ही खाने को दे दे।"

सेठानी माँ ने उत्तर मे कहा—"बेटा! अभी नहीं। जब तुम्हारे पिताजी स्नान करके आयेंगे, तब एक साधू मैं खाऊँगी, एक साधू तुम खाओगे, एक तुम्हारे पिताजी खायेंगे, चौथा साधू तुम्हारी बड़ी जीजी खायेगी, और पाँचवाँ तुम्हारे बड़े भैय्याजी खायेंगे।"

माँ और बेटे की बातें पास ही बैठक में बैठे पाँचों साधुओं के कान में पड़ी। वे यह सुनकर इतने डरे कि चुप-चाप बैठक से बाहर निकल भागने लगे। किन्तु इतने मे सेठजी भी आपहुँचे।

साधुओं को भगता देख सेठजी भी इन्हें पकड़ने के लिए पीछे-पीछे दौड़ लगाने लगे। सेठजी को बलपूर्वक पीछा करते देख, इन साधुओं का भ्रम और भी पक्का होगया। समझे अब हमारी खैर नहीं। बिचारे, जी तोड़ कर, तेजी से प्राण बचाने के लिए भागे। इन्होंने अपने कमंडल आदि भी फेंक दिए। सेठजी ने भी पगड़ी, अँगोछा फेंक कर, और धोती चढ़ाकर दौड़ लगानी शुरू की।

बेचारे साधू हाँप गए और थक कर चूर-चूर हो गए। हार कर एक वृक्ष की छाया के नीचे पसर गए। सेठजी के पास आते ही बोले—"लो, सेठजी खालो। यहाँ पाँच में से किसी एक ही को तो खा सकोगे, बाकी चार की तो जान बचेगी।"

सेठजी हैरान कि यह क्या माजरा है? हाथ जोड़ कर पूछने लगे—"महाराज! आप हमारे यहाँ से बिना भोजन पाये वैसे ही

क्यों भाग आए ? क्या हमारी श्रद्धा में कुछ त्रुटि होगई ? कुछ बताना तो चाहिये, बिना आप को प्रसन्न किए मैं अन्न-जल ग्रहण न करूँगा। और आप यह क्या कहते हैं कि लो सेठजी खा लो। क्या मैं नरभक्षक राक्षस हूँ ?"

जब साधुओं ने भाग आने का कारण बताया तो सेठजी खिल-खिला कर हँस पड़े। और विनयपूर्वक सब घटना का निरूपण करते हुए कहा—"महाराज ! माँ बेटे खाँड़ के साधुओं की बात कर रहे थे। दिवाली पर इस प्रकार खाँड़ के खिलौने बना करते हैं जिन्हें पूजा के बाद बूढ़े और बालक सब मिठाई के रूप में खा लेते हैं। इस लिए बच्चे ने खिलौना समझ कर माँगा होगा। क्यों कि अब दीपावली का त्यौहार नहीं है, इस लिए आपका ध्यान भी उधर नहीं गया। आप एक बालक के मन बहलाने की बात का इतना गंभीर अर्थ लगा बैठे।"

बड़ी प्रार्थना के बाद साधू लौटे और सेठजी का अतिथि-सेवा-व्रत पूर्ण हुआ।



वन्दर की याद

एक व्यक्ति किसी योगी के पास वशीकरण मन्त्र सीखने गया। योगी ने उसे एक मन्त्र बताया और कहा—'एकान्त स्थान में बैठकर एक हजार बार इस मन्त्र का जाप करने से दूसरों का मन वश में किया जा सकता है।' मन्त्र को लेकर वह-व्यक्ति योगी के पास से प्रसन्न होकर चलने लगा।

चलते समय उस व्यक्ति को बुलाकर योगी ने कहा—"देखो भाई, मैं तुमसे एक बात कहना भूल गया हूँ। उस मन्त्र का जाप करते समय मनमें वन्दर का ध्यान अवश्य आता है। तुम अपने मन में उसे मत आने देना, नहीं तो मन्त्र सिद्ध न होगा?" योगी का यह उपदेश सुनकर वह प्रसन्नता से अपने घर चला आया। उसने अपने मन में यह दृढ़ निश्चय कर लिया कि मन्त्र जपते समय वह वन्दर का ध्यान कभी नहीं आने देगा।

पर जब उसने घर में एकान्त स्थान खोजकर मन्त्र जपना आरम्भ किया, तब हठात् उसके मनमें वन्दर का ध्यान आ गया। जैसे-जैसे वह अपने मन मे से वन्दर को हटाता था, वैसे-वैसे वह और भी प्रबल होता जाता था।

उस व्यक्ति ने योगी के पास जाकर कहा—महाराज, यदि आप मुझे वन्दर की बात न कहते, तो मैं अवश्य ही अपने प्रयत्न में सफल हो जाता!

राष्ट्रिय चेतना का मानदण्ड

एक बार एक सज्जन बर्मा गए। वहाँ दो बर्मियों ने उनका यथेष्ट सत्कार-सम्मान किया। प्रवास-योग्य उचित सहायता तथा सुविधा पहुँचाई।

जब वे बर्मा से लौटने लगे तो बर्मी मेज़बानों का आभार मानते हुए, बार-बार अपने योग्य कोई सेवा कार्य बतलाने के लिए आग्रह करने लगे। इस पर बर्मियों ने सकुचाते हुए कहा—"आपके योग्य यही सेवा है कि यदि बर्मा प्रवास में आपको किन्हीं भी बर्मियों की ओर से कोई क्लेश पहुँचा हो या उनके स्वभाव-आचरण के सम्बन्ध में आपने कोई कटु धारणा बना ली हो तो कृपाकर आप उसे समुद्र में डालते जाएँ। अपने देशवासियों को इसका आभास तक न होने दें कि कुछ बर्मी ऐसे भी अभद्र होते हैं।"

यह है सच्ची राष्ट्रियता और राष्ट्रियता का सच्चा अभिमान। राष्ट्र की प्रतिष्ठा के प्रति जब यह चिन्ता जागेगी, तभी राष्ट्र यशस्वी होगा।

अतीत की कल्पना का आधार

कलकत्ता में अधिकतर मोटर-ड्राइवर सिक्ख हैं। एक बार वहाँ गुरु नानकदेव का जुलूस बाजारों से गुजर रहा था। किसी अँग्रेज ने देखा तो एक बंगाली से पूछा—"यह उत्सव कैसा है, किसका है?"

बंगाली ने जवाब दिया—"यह ड्राइवरों के मास्टरों का जुलूस है। सुना है, वह मोटर चलाने में बड़ा होशियार था।"

जवाब देने वाले का क्या अपराध? वह सिक्ख मोटर-ड्राइवरों की अधिकता और उनके वर्तमान व्यवहार के परे कैसे जाने कि सिक्ख जाति मे भी बड़े-बड़े त्यागी, तपस्वी, शूर-वीर, राजा-महाराजा हुए हैं और हैं। मोटर-ड्राइवर सिक्खों के वर्तमान व्यवहार ने गुरु नानकदेव को भी मोटर-ड्राइवर बना दिया! अतीत की महत्ता को आँकने के लिए वर्तमान की महत्ता अतीव अपेक्षित है, यह भूलिए नहीं।

मूर्खों के त्याग का आदर्श

एक बूढ़े जन-सेवक की बात है। वह रोज़ लोगों की सेवा करता था, लोगों का मैल धोता था, गली-मुहल्ले की सफाई करता था, उन्हें रोटी देता था, उन्हें ज्ञान देता था। किन्तु स्वयं थोड़े-से अन्न-वस्त्र पर निर्वाह करता था। लोगों ने उसकी तारीफ़ की।

एक मूर्ख ने कहा—"इसमें तारीफ़ की कौन-सी बात है? बुड्ढा पूरे कपड़े पहनता है।"

बुड्ढे ने सुन लिया और कपड़े फेंक दिये, बस एक लंगोटी लगा ली।"

दूसरे मूर्ख ने कहा—"ओ हो, इसमें क्या है? बुड्ढा दूध, फल काफ़ी खा जाता है।"

बुड्ढे ने दूध भी छोड़ दिया, फल भी छोड़ दिये। फिर एक तीसरे मूर्ख ने कहा—"और यह तो रोटी खाता है।"

बुड्ढे ने कच्चे चना चबाना शुरू कर दिया।

चौथे मूर्ख ने कहा—"आखिर खाता तो है।"

बुड्ढे ने खाना भी छोड़ दिया।

पाँचवें मूर्ख ने कहा—"पानी तो पीता है।"

इस पर पानी को भी अन्तिम नमस्कार कर बुड्ढा एक रात को राम-राम' करते-करते मर गया। सुबह हुई तो न कोई सेवा करने वाला, न रोटी देने वाला। लोग खूब रोये। बुड्ढे की तारीफ़ की। किन्तु किसी ने यह नहीं कहा कि हमीं ने बुड्ढे को मार दिया।

जैसी रेखा वैसी घोड़ी

एक सामुद्रिक शास्त्री ने घोषित किया कि "जिसके दाहिने पैर में ऊर्ध्वरेखा होती है, उसे सवारी के लिये घोड़ी मिलती है।"

श्रोताओं मे से एक ने अपना पैर देखा, लेकिन ऊर्ध्वरेखा नहीं थी। तब उसने लोहे के एक चिमटे को गरम कर दाहिने पैर के तलवे में रेखा उपाड़ ली। घाव जरा गहरा हो गया भरा नहीं, सड़ गया। फलतः उसे बिस्तर पर पड़ जाना पड़ा और पैर हमेशा के लिये बेकार हो गया। अब उसे लकड़ी की घोड़ी के सहारे चलना पड़ा।

एक दिन मार्ग में पहले वाले सामुद्रिक शास्त्री से भेंट हो गई। उसने पूछा—"तुम्हारे कथनानुसार मैंने अपने पैर में ऊर्ध्वरेखा पैदा की, लेकिन मुझे सवारी के लिये घोड़ी तो नहीं मिली ?"

सामुद्रिक शास्त्री ने कहा—"हमारा शास्त्र कभी झूठा निकलता ही नहीं। यदि तुम्हारी ऊर्ध्व-रेखा असली होती तो असली—सच्ची घोड़ी मिलती। लेकिन तुमने तो रेखा हाथ से बनाई है, अत. तुम्हें हाथ की बनी लकड़ी की घोड़ी मिली है। असली नहीं, नकली मिली, घोड़ी मिली तो सही, जैसी रेखा वैसी घोड़ी।



कंजूसों का सरदार

एक यहूदी की दुकान पर एक स्काच माल खरीदने गया। स्काच को पहले ही सावधान कर दिया गया था कि यहूदी दुगुने दाम माँगा करता है, इसलिए मोल-तोल ठीक-ठीक करना, ठगे न जाना।

स्काच साहब सावधान तो थे ही। एक छाते की क़ीमत पूछी। यहूदी ने कहा—दश शिलिंग। इस पर स्काच साहब ने फ़रमाया, यह तो बहुत ज्यादा हैं, हम तो पाँच शिलिंग देंगे। यहूदी ने कहा—पाँच तो नहीं, पर तुम सज्जन मालूम होते हो, इसलिए छाता आठ शिलिंग में दे सकता हूँ। इन्होंने तो पहले से ही गणित का मार्ग स्वीकार कर लिया था। इन से कहा गया था कि यहूदी दूना दाम माँगा करता है, इसलिए वह जितना माँगता था, स्काच साहब उससे आधा कहते थे। जब यहूदी पाँच शिलिंग पर पहुँचा, तब तो स्काच महाशय ढाई शिलिंग पर उतर चुके थे। यहूदी धीरज खो बैठा और उखड़ कर बोला—"तुम तो पूरे मक्खीचूस मालूम होते हो। लेजाओ, यह छाता मुफ्त में।"

स्काच साहब विचार में पड़ गए, मामला टेढ़ा था, पर फिर भी गणित ने साथ दिया।' झटपट उन्होंने फैसला कर लिया और बोले,—"तो अच्छा एक नहीं, दो दे दो।" सुनने वाले लोग खिल खिला उठे। पर स्काच को सन्तोष हो गया कि उन्होंने अपनी जाति की कंजूसी का सिक्का श्रोताओं पर जमा लिया।

चाण्डाल कौन ?

एक पंडितजी कहीं कथा बाँच रहे थे। कथा में प्रसंग चल रहा था कि क्रोध चाण्डाल-रूप है। वहाँ किनारे बैठी एक मेहतरानी भी कथा सुन रही थी। दूसरे दिन प्रातःकाल जब पंडितजी गंगा-स्नान के लिए जा रहे थे, तो रास्ते में वही मेहतरानी सड़क बुहार रही थी। पंडितजी ने पुकारा—'रुक जा।' वह अपनी धुन में मस्त थी। सुना नहीं।

तब पंडितजी कड़क कर बोले—'सुनती नहीं नीच।' मेहतरानी ने कहा—'महाराज, जरा बच कर निकल जाइए। मैं हर आदमी के लिए रुकती रहूँ, तो दिनभर मे भी मेरा काम पूरा न हो।' उसके जवाब ने पंडितजी की क्रोधाग्नि मे घी का काम किया। जामे से बाहर होगए। जबान से ऊल-जलूल बकने लगे। हाथ में जो लोटा था उस से मेहतरानी को मारने दौड़े। मेहतरानी जरा तेज तबियत की औरत थी। उसने झाड़ू किनारे रख दी और एक हाथ से पंडितजी का डंडा पकड़ा और दूसरे से उनका हाथ। और लगी पकड़ कर खींचने। अब तो पंडितजी की सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई। आने-जाने वालों का मेला लग गया। पंडितजी लोगों को देख-देख गड़े जाते थे।

लोगों ने पंडितजी से पूछा—"क्या हुआ महाराज ?" पंडितजी के मुँह से तो बोल नहीं निकलता था। मेहतरानी से

पूछा—"क्या हुआ री ? तू पंडितजी का हाथ पकड़ कर क्यों खींच रही है ?" उसने कहा—ये मेरे पति हैं। किसी ने पूछा—अरे, यह तेरे पति कैसे हुए ? मेहतरानी बोली—कल इन्होंने कथा में कहा था—'क्रोध चाण्डाल है।' और आज मेरा बुहारना न रोकने पर इन्हें क्रोध आगया और यह मुझे मारने दौड़ पड़े। जब इनमें क्रोध आगया तो यह मेरे पति होगए न ? अब इन्हें मैं अपने घर ले जा रही हूँ कि चलो महाराज, अब तो आप चाण्डाल हो ही गए ?

अवसर को सामने से पकड़ो

एक मूर्तिकार ने मूर्ति बनाई और सबको दिखाने के लिए एक सार्वजनिक स्थान पर रख छोड़ी। देखने वालों की भीड़ लग गई। परन्तु यह क्या, मूर्ति के चेहरे के सामने तो बाल हैं, परन्तु पीछे से गुद्दी का भाग बिल्कुल गंजा है।

पूछा गया तो मूर्तिकार की ओर से उत्तर मिला—"साहब, यह अवसर की मूर्ति है। यदि तुम आते ही सामने के बालों को सहसा पकड़ लो तो उसे पकड़े रह सकते हो, परन्तु यदि तुम आलस्य में रहे और उसे एक बार आगे भग जाने दिया तो फिर तुम तो क्या, तुम्हारे देवता भी उसे न पकड़ सकेंगे। इसीलिये पीछे से पकड़ने के लिए उसकी गुद्दी में बाल नहीं है।"

लड़का न लड़की !

किसी महाराज ने एक पंडितजी से जाकर पूछा—"महाराज ! आप अपनी ज्योतिष विद्या की बड़ी तारीफ हाँका करते हैं, भला बतलाइए तो सही मेरी स्त्री के क्या सन्तान होगी ?"

पण्डितजी ने तुरन्त उत्तर दिया—"इसका क्या है ? यह तो मामूली बात है। पर इस में एक शर्त यह रहेगी कि मैं जो लिखे देता हूँ उसे तुम अभी नहीं देख सकोगे, क्योंकि तुम तो मेरी परीक्षा करने जा रहे हो न ! इसलिए सन्तान होने पर मेरी तारीफ देखना कि मैं जो अभी लिखे देता हूँ, वह ठीक निकलता है या नहीं ?"

पण्डितजी ने उस प्रश्नकर्ता को जन्मपत्री टटोल कर न देखने की शर्त पर—उसे कुछ लिख दिया। लड़की हो जाने के पश्चात् उस पत्र को खोला गया तो उस में लिखा था कि 'लड़का न लड़की।' फिर क्या था, पण्डितजी उछल पड़े और कहने लगे "देखा, मैंने तो पहले ही लिख दिया था कि लड़का न, लड़की—अर्थात् लड़का नहीं, लड़की होगी।"

पाठक भली भाँति समझ गए होंगे कि इसमें पण्डितजी की क्या चाल थी। यदि लड़का होता तो वे फ़ौरन कह उठते कि लड़का, न लड़की।' और यदि उस पूछने वाले की गुस्ताखी ही होती तो भी उसमें लिखा ही था कि—'लड़का न लड़की'—अर्थात् 'कुछ भी नही।'

मरने से क्या डर ?

महाराजा विक्रमादित्य राज-सिहासन पर अभिषिक्त हुए ही थे कि उसी रात्रि में अग्नि वेताल नामक राक्षस से उनकी मुठभेड़ होगई । राक्षस ने कहा—"राजन् ! मैं ब्रह्म राक्षस हूँ । मेरा काम है राजाओं को मारना । अतः अपने इष्ट देव को स्मरण कर तैयार हो जाओ—स्वर्गलोक की यात्रा के लिए ।"

राजा ने कहा—"बहुत अच्छा ! मैं तो स्वर्ग-यात्रा के लिए प्रतिक्षण तैयार रहता हूँ । परन्तु मारने से पहले कृपा करके मुझे यह तो बता दीजिए कि मेरी आयु कितनी है ?"

राक्षस ने कहा—"यह तो मुझे पता नहीं । हाँ, मैं अपने स्वामी इन्द्र से पूछ कर अवश्य बता सकता हूँ ।" राक्षस कल आने के लिए कह कर चला गया ।

दूसरे दिन मध्य रात्रि में आकर राक्षस ने कहा—"इन्द्र देव ने तुम्हारी आयु सौ साल की बताई है ।" इस पर राजा ने फिर कहा—"आप बड़े उदार और सज्जन देवता हैं । कृपया इन्द्र से कह कर मेरी आयु सौ वर्ष से एक वर्ष अधिक या एक वर्ष कम करादें ।"

दूसरे दिन अग्निवेताल ने आकर कहा —"एक वर्ष तो क्या, एक क्षण भी किसी की आयु को अधिक या कम नहीं किया जा सकता । इन्द्र ने इस सम्बन्ध में अपनी असमर्थता प्रकट की है ।"

राजा विक्रम ने म्यान से तलवार निकाल कर कहा—"अब आइए, निर्णय करलें कि कौन किस को मारता है ?" घन घोर

युद्ध के बाद—राक्षस पराजित हो गया और उस ने राजा की आजन्म दासता स्वीकार करली।

यदि जीवन है तो मृत्यु का क्या डर है? और यदि जीवन नहीं है तब भी मृत्यु का क्या डर है? मनुष्य को तो जीवन और मरण के भय से सर्वथा अलग हो कर कर्त्तव्य-पथ पर निरन्तर संघर्ष करते रहना चाहिए।

पानी अच्छा होता तो?

एक फ़क़ीर को बड़ी भूख लगी हुई थी। सामने नगर के एक धनी व्यक्ति को जाते हुए देखा, तो हाथ फैला कर बोला—"बाबा! कुछ दया होजाय। बड़ी भूख लगी है।"

"यहाँ तुम्हारी दाल नहीं गलेगी।" उस धनी व्यक्ति ने व्यंग्य की मुद्रा मे कहा।

"पानी अच्छा होता तो दाल अवश्य गल जाती श्रीमान्।" फ़क़ीर ने झट-पट उत्तर दिया और हँसता हुआ आगे बढ़ गया।

बुढ़िया का अहंकार !

एक बुढ़िया घर में अकेली थी, उसे पान खाने का बड़ा शौक़ था। किन्तु आस-पास के पड़ौसियों की इतनी अधिक उदासीनता कि कोई उसे यह न कहता कि वह पान खाती है।

बुढ़िया ने लोगों की इस बेरुखी से अधीर होकर एक दिन अपने घर को आग लगादी और शोर मचा दिया—"दौड़ो, दौड़ो। घर में आग लग गई है।"

पड़ौसी दौड़े आए। कुछ घर का सामान बाहर निकलवाने लगे और कुछ आग बुझाने के लिए पानी लाने में व्यस्त होगए।

बुढ़िया ने सामान निकालने वालों में से एक से कहा—"बेटा, जरा मेरा पानदान भी निकाल देना।" इस पर पास खड़े हुए एक आदमी ने टोका—"ओ हो! बुढ़िया, तू पान भी खाती है ?"

इस पर बुढ़िया ने प्रश्नकर्ता को गालियाँ और उपालम्भ देते हुए कहा—"तुमने यही बात पहले पूछ ली होती तो मेरे घर को आग ही क्यों लगती ?"

मनुष्य नहीं, पशु

"ताँबे का एक पैसा या एक पाव-भर आटा मिल जाता, बाबूजी! भूखी आत्मा है। आप आनन्द में रहें।"

एक भिखारी बड़ी देर से दरवाजे के सामने चिल्ला रहा था। मकान-मालिक अपनी बैठक में बैठा हुआ हुक्का पी रहा था। झल्ला कर बोला—"एक बार कह दिया, दो बार कह दिया—कि यहाँ कोई आदमी नहीं है। मानेगा नहीं बे? चिल्ला-चिल्ला कर नाहक तंग कर रहा है।"

भिखारी को अब मजाक सूझा। निराश तो हो ही गया था। सोचा जाते-जाते तसल्ली के लिए एकाध चुटकी ही क्यों न ले लूँ? बोला—"हुजूर को तो मैं आदमी समझ कर ही माँग रहा था। मुझे क्या पता था कि आप आदमी नहीं हैं, पशु हैं।'

भिखारी नौ दो ग्यारह हो गया।

अन्धानुकरण !

एक शहर में राजा की सवारी निकल रही थी। राज-कर्मचारियों ने देखा कि जुलुस के मार्ग में किसी बच्चे ने टट्टी कर दी है। राजा की सवारी नजदीक आ चुकी थी। अतः महतर को बुलवाकर उठवाने का समय नहीं रहा था। चट एक दूरन्देश ने वहीं खड़े हुए मनुष्यों से फूल लेकर उस पर डाल दिए।

राजा की सवारी निर्विघ्न गुजर जाने के बाद भीड़ के लोगों मे से कुछ ने कौतूहलवश जमीन पर फूल चढ़ाने का कारण पूछा, तो किसी मसखरे ने कह दिया—"पृथ्वी से गंदी देवी प्रकट हुई है।"

इतना सुनना था कि हिए के अंधों ने फूल चढ़ाने शुरू कर दिए। और एक अवसरवादी मजहबी दीवानगी के नाम पर गांठ के पूरे लोगों से चन्दा उगाह कर उसी स्थान पर मन्दिर बनवाकर महन्त बन बैठा !

समय की सूझ

लखनऊ का एक प्रसिद्ध नवाब बड़ा ही अस्थिर चित्त व्यक्ति था। वह किसी भी कार्य को दृढता पूर्वक नहीं कर पाता था। मानसिक दुर्बलता ने उसके जीवन को बेकार कर दिया था !

कहा जाता है—एक बार उसने एक व्यक्ति को किसी परगने का शासन करने के लिए अधिकारी नियुक्त कर के भेजा। ज्यों ही वह अधिकारी उस परगने मे पहुँचा, त्यों ही उस को तो वापस लौटने का परवाना मिला और उसके स्थान पर किसी दूसरे आदमी को नियुक्त कर के भेज दिया। इस दूसरे आदमी को आते देर न हुई थी कि वह भी वापस बुला लिया गया और उसके स्थान पर तीसरा आदमी आ पहुँचा। तीसरे की भी वही दशा हुई।

हाँ तो जब नवाब साहब की आज्ञा पाकर चौथा आदमी उस परगने की ओर चलने लगा, तब उसे चलचित्त नवाब के विचारों की अस्थिरता का ध्यान आया। वह व्यक्ति बड़ा ही चतुर और कुछ मसखरा भी था। इसलिए घोड़े पर दुम-पूँछ की तरफ मुँह करके सवार हुआ और नगर से बाहर शहर की तरफ मुँह किए महल के पास से परगने की ओर चलने लगा। उस समय नवाब साहब महल की छत पर टहल रहे थे, उन्होंने उसे घोड़े पर पूँछ की ओर मुँह करके बैठे हुए देखा तो वे बड़े आश्चर्य एवं कुतूहल में पड़े।

झटपट पीछे से एक तेज़ सवार भेजकर उसे वापस बुलवाया और घोड़े पर इस प्रकार उलटे सवार होने का कारण पूछा। उसने बड़ी ही संजीदगी से उत्तर दिया—"हुज़ूर! मुझ से पहले तीन आदमी वहाँ काम करने के लिए भेजे गए और वहाँ पहुँचते ही झटपट बिना किसी कारण के वापस बुला लिए गए। इसलिए मुझे भी डर था कि मैं चल तो रहा हूँ, पर मुझे भी वापस बुलाने के लिए पीछे से परवाना आता ही होगा! उस परवाने के इंतज़ार में ही मैं घोड़े पर महल की तरफ मुँह किए बैठा था!"

नवाब साहब अपनी अस्थिरचित्तता पर बहुत ही लज्जित हुए और आगे फिर कभी उन्होंने अपना निश्चय बदलने में इतनी शीघ्रता नहीं की।

खूब मिले!

पाँच आदमी एक जगह बैठे इधर-उधर की गप्प लड़ा रहे थे। एक था बहरा, दूसरा था अंधा, तीसरा था लँगड़ा, चौथा था लूला और पाँचवाँ था कंगला—पूरा दरिद्र नारायण।

अचानक बहरा बोला—'मुझे ऐसा सुनाई पड़ता है कि चोर आ रहे हैं।" इस पर अंधा बोला—"कुछ दिखाई तो मुझे भी ऐसा ही दे रहा है।" लँगड़ा डर कर बोला—"चलो, यार भाग चलें।" इस पर लूले को जोश आगया—'मैं पकड़ लूँगा बेईमानों को।" कंगाल गुस्से में चिल्ला उठा—"अरे, क्या मुझे लुटवाओगे?"

खाओ और खाने दो

किसी राजा के तीन पुत्र थे। वह एक को राज-सिंहासन पर बैठाना चाहता था; परन्तु निश्चय न कर पाता था कि तीनों में से किसे राज-गद्दी दे।

एक दिन राजा ने तीनों राजकुमारों को मिष्टान्न-थालियाँ परोसी। ज्यों ही तीनों भोजन करने के लिए बैठे, त्यों ही व्याघ्र के समान शृंखलाबद्ध भयानक कुत्तों को उन पर छोड़ दिया। शृंखला से छूटते ही कुत्ते राजकुमारों के ऊपर झपटे और उनकी थाली में मुँह डालने लगे। यह देख कर पहला राजकुमार भय के मारे उठ खड़ा हुआ और अपनी थाली छोड़ कर भाग खड़ा हुआ।

दूसरा राजकुमार डंडा लेकर कुत्तों को मारने लगा। वह स्वयं भोजन करता रहा, परन्तु कुत्तों को नहीं खाने दिया।

तीसरे राजकुमार ने सोचा कि अकेले-अकेले खाना ठीक नहीं है। अतएव वह स्वयं भी खाता रहा और बीच-बीच में कुत्तों को भी खिलाता रहा। सब के सब कुत्ते शान्त पड़ गए, पूँछ हिलाने लगे।

राजा तीसरे राज-कुमार से बहुत प्रसन्न हुआ; फलतः उसे ही राज-पद पर अभिषिक्त किया। मनुष्य को न भगोड़ा होना चाहिए। न लड़ाकू होना चाहिए; किन्तु खाने और खिलाने वाला होना चाहिए।

कला की परख ?

एक कलाकार युवक ने बाँसुरी बजाने का सुन्दर अभ्यास किया। वह अपनी कला में इतना दक्ष हो गया कि उसकी प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैलने लगी।

एक बार वह एक धनी सेठ के पास गया। उसने सोचा था कि सेठ बाँसुरी सुन कर प्रसन्न होंगे और मुझे अवश्य ही बहुमूल्य उपहार प्रदान करेंगे।

सेठ थे अरसिक। साथ ही मूँजी और धूर्त भी। घंटों बाँसुरी सुनने के बाद कहा कि "इसमें क्या कला है ? बाँसुरी अंदर से पोली है, अतः उसमें मुँह की हवा भरती है तो वह बजती है। यदि तुम सच्चे कलाकार हो तो यह मेरी बाँस की लाठी लो और इसे बजा कर दिखाओ। पता तो चले, तुम कितने चतुर बजाने वाले हो ?"

पोलुं छे ते बोल्युं, करी तें शी कारीगरी ?
सांबेलुं बगाड़े त्यारे जाणुं के तुं शाणो छे !

छाया के पीछे न दौड़िए

एक नादान बालक चाँदनी रात में खेलने के लिए घर से बाहर निकला। उस ने अपनी छाया को अपने से भिन्न दूसरा बालक समझा और उसे प्यार करने दौड़ा। परन्तु ज्यों-ज्यों वह आगे बढ़ता, त्यों-त्यों छाया भी आगे-आगे दौड़ती, पकड़ में ही नहीं आती। आखिर बालक छाया के पीछे दौड़ता-दौड़ता थक गया और खड़ा होगया। ज्योंही वह ठहरा तो छाया भी ठहर गई। अब की बार बालक, अपने साथी को निकट ही खड़ा जान, उसे पकड़ने के लिए फिर झपटा। किन्तु यह क्या, वह छाया रूपधारी बालक फिर आगे खिसक गया। अन्त तो गत्वा बालक हैरान होगया, थक कर चूर-चूर होगया। एक जगह खड़ा होकर रोने लगा।

बालक की समझदार माता यह सब चरित्र देख रही थी। वह दौड कर बालक के पास आई और कहा—"ले, अब पकड़ले अपने साथी को। बालक का अपना सिर उसके अपने हाथों में पकड़वाया तो छाया का सिर अपने आप पकड़ में आगया। बालक प्रसन्नता से नाच उठा।

यह संसार का समस्त पदार्थ जात एक छाया है। उसे पकड़ने की धुन में संसार-जीव व्याकुल हैं, किन्तु वह छाया पकड़ने में ही नहीं आती। जो छाया को न पकड़, अपने आप को पकड़ता है, उस की पकड़ में त्रिलोकी का राज्य अपने आप पकड़ में आजाता है।

गोपनीय महामंत्र

एक श्रद्धालु भक्त प्रतिदिन गाँव के बाहर एक महात्मा के पास जाया करता था। जब महात्माजी की सेवा करते-करते उसे बहुत दिन बीत गए, तब महात्मा ने उसे अधिकारी समझ कर कहा—"वत्स ! तेरी मति भगवान् में है, तू श्रद्धालु है, किसी का बुरा नहीं चाहता, किसी से घृणा और द्वेष नहीं करता, सरल चित्त है, सन्तों का उपासक है और जिज्ञासु है, इसलिए तुझे एक ऐसा गोपनीय मंत्र देता हूँ जिसका पता बहुत ही थोड़े लोगों को है। यह मंत्र परम गुप्त और अमूल्य है, किसी से कहना नहीं। यों कहकर महात्मा ने उसके कान में धीरे से कह दिया—'राम'। श्रद्धालु भक्त उसी दिन से रात-दिन राम मंत्र का जप करने लगा।

एक दिन वह गंगा नहा कर लौट रहा था तो उसका ध्यान उन लोगों की ओर गया, जो हज़ारों की संख्या में उसी की तरह गंगा नहा कर ज़ोर-जोर से राम-राम पुकारते चले आरहे थे। सुनता तो रोज़ ही था, परन्तु इस ओर ध्यान नहीं गया था। आज ध्यान जाते ही उस के मन में यह विचार आया कि—"महात्मा तो राम मंत्र को बड़ा गुप्त बतलाते थे, मुझ से कह भी दिया था कि किसी से कहना नहीं, परन्तु इस को तो सभी जानते हैं। हज़ारों मनुष्य "राम-राम" पुकारते हुए चलते हैं।"

मन में कुछ संशय उत्पन्न होगया। वह अपने घर न जा कर सीधा गुरु के समीप गया और अपने मन का संशय कह

सुनाया। महात्मा जी ने कहा:"भाई! तेरे प्रश्न का उत्तर पीछे दिया जायगा। पहले तू मेरा एक काम कर।" महात्मा जी ने झोली में से एक चमकती हुई काँचकी-सी गोली निकाली और उसे भक्त के हाथ में देकर कहा—"बाजार मे जा और इसकी क़ीमत करवा कर जल्द लौट आ। बेचना नही है, सिर्फ कीमत जाननी है। सावधान! कीमत आंकाने मे कहीं भूल न होजाय।"

भक्त श्रद्धालु था। आज कल का-सा होता तो पहले ही गुरु-महाराज को आड़े हाथों लेता और कहता—"मैं तुम्हारे कॉंच के टुकड़े की क़ीमत ऑंचवाने नहीं आया हूँ। पहले मेरे प्रश्न का उत्तर दीजिए बहाना मत बनाइए।" हाँ, तो भक्त अपना प्रश्न नहीं छोड़ कर बाजार गया। सब से पहले एक शाक बेचनेवाली मिली। उसे वह गोली दिखाकर पूछा—"इस की क्या कीमत है? शाक बेचनेवाली ने पत्थर की चमक और सुन्दरता देख कर सोचा कि बच्चों को खेलने के लिए कॉंच की बड़ी सुन्दर गोली है। बाजार में कहीं ऐसी नहीं मिलती। अतः उसने कहा:"सेर-दो-सेर आलू या बैंगन ले लो।" वह आगे बढ़ा, एक सुनार की दुकान थी, वहाँ ठहरा। सुनार को गोली दिखा कर पूछा:"भाई! इस की कीमत क्या दोगे? सुनार ने नक़ली हीरा समझ कर सौ रुपये देने को कहा। भक्त की दिलचस्पी बढ़ी, वह आगे बढ़ कर एक महाजन के यहाँ गया। उसने पुखराज समझ कर एक हजार देने को कहा। आगे बढ़ा तो जौहरी मिला। उसने असली हीरा समझा और एक लाख रुपयों में उसे माँगा। एक और बड़ा जौहरी मिला। उस ने हीरा देख कर कहा—"भाई! यह तो अनमोल हीरा है। इस देश के सारे जवाहरात इस के मूल्य में दिए जायँ, तबभी इस का मूल्य

पूरा नहीं होता। इसे बेचना नहीं।" यह सुनकर भक्त ने विचार किया कि अब तो सीमा हो चुकी।

भक्त ने गुरु से सब निवेदन किया। हीरा गुरु को सौंप कर अपनी शंका का समाधान माँगा। संत ने कहा—"मैं तो उत्तर दे चुका हूँ, तू अभी समझा नहीं। रत्न अमूल्य था, परन्तु उस की असली पहचान केवल सब से बड़े जौहरी को ही हुई। चीज हाथ में होने पर भी जब तक उस की पहचान नहीं होती, तब तक उसका असलीपन गुप्त ही रहता है। राम-नाम भी अनमोल है, परन्तु उसकी पहचान सब को नहीं है। वे दयापात्र हैं,जो इस अमूल्य हीरे को कौडी-कौडी के मूल्य पर बेच देते हैं। सांसारिक वासना की पूर्ति के लिए भगवान् का नाम लेना, अमूल्य हीरे के बदले सेर-दो सेर साग-सब्जी खरीदना है।

शास्त्र के प्रति अन्याय

कुरान में लिखा है —"नमाज मत पढ़ो, जब कि तुम नापाक हो।"

एक मुसलमान रोज़-रोज़ नमाज़ पढ़ने से घबराता था, अतः वह अपने साथियों से पीछा छुड़ाने के लिए, 'जब कि तुम नापाक हो'—इस वाक्यांश को दबाकर, अपने साथियों को कुरान दिखा कर कहने लगा—"देख लो, कुरान में भी लिखा हुआ है कि—"नमाज़ मत पढ़ो।"

स्वार्थ की दृष्टि हो तो शास्त्र के प्रति न्याय नहीं हो सकता।

इंग्लैंड रिटर्न वैज्ञानिक

नारायण बी० एस-सी०, लन्दन से कृषि-कालेज की उच्चतम उपाधि लेकर अपने गाँव आया। उसके चाचा उसे अपना खेत और बाग़ दिखाने ले गये। एक पेड़ के पास रुक कर नारायण ने कहना शुरू किया—

"मुझे दुःख है चाचाजी, कि आप लोगों को इतना अनुभव होते हुए भी आप आम की पैदावार नहीं बढ़ाते। अगर आप अच्छी तरह खाद का प्रयोग करें, आमों को समय से पहले तोड़ने से रोकते रहें, पेड़ की सलामती और बेहतरी के वैज्ञानिक तरीक़े बरतें, तो इस जैसा एक आम का पेड़ अब से दुगुने और बढ़िया फल दे सकता है। आश्चर्य है, आपको अभी तक ऐसे विचार क्यों नहीं सूझे? आश्चर्य है, महान् आश्चर्य है!"

चाचा ने उत्तर दिया—"मुझे भी आश्चर्य है, बेटा! क्योंकि यह पेड़ आम का नहीं, अमरूद का है।"

यह है इंग्लैण्ड रिटर्न वैज्ञानिकों का वैज्ञानिक अध्ययन। पोथी-पंडितों से देश की समस्याएँ हल नहीं हो सकतीं।

सत्य की शोध

एक बुढ़िया ने अँधेरी रात में अपनी सुंई घर के भीतर गँवा दी थी और उसकी खोज बाहर सड़क पर लालटैन की रोशनी में कर रही थी।

बुढ़िया को सड़क की खाक छानते देखकर एक दयालु राहगीर ने पूछा—"बुढ़िया माँ, यहाँ क्या खोज रही हो ?"

उत्तर मिला—"बेटा, सूंई खो गई है, सो उसे बड़ी देर से खोज रही हूँ। मिल ही नहीं रही है। जरा तुम ही खोज दो।"

राहगीर ने इधर-उधर खोजते हुए पूछा—"कहाँ खो गई है ?" उत्तर मिला—"घर में।" राहगीर हँसकर बोला—"अन्दर खोई वस्तु को बाहर खोजना कैसी भूल है ?" बुढ़िया ने मुँह बनाकर कहा—"हाँ बेटा, सच कहते हो,- परन्तु घर में दीपक नहीं है। सोचा—सड़क पर लालटेन जल रही है, सो वहीं खोज लूँ। अन्धकार में प्रकाश चाहिये न ?"

ठीक यही दशा उन साधकों की है, जो अपने मन-मन्दिर में ज्ञान का दीपक जलाकर ईश्वर की खोज नहीं करते और बाहर के शास्त्रों एवं तीर्थों में ईश्वर की खोज में खाक छानते तथा भटकते फिरते हैं। सत्य की खोज हृदय में होनी चाहिए, बाहर नहीं।

समय चूकि पुनि का पछतावा !

चित्रशाला में एक व्यक्ति ने प्रवेश किया। बहुत-से चित्र उसे दिखलाए गए। उसने देखा कि एक चित्र है, जिसमें एक व्यक्ति का चेहरा काले बालों से ढका हुआ है और उसके पैरों में पंख लगे हुए हैं।

दर्शक ने पूछा—"यह किस की तसवीर है ?"

चित्रकार ने कहा—"अवसर की ?"

"इस का मुँह क्यों छिपा हुआ है ?"

"क्योंकि जब यह मनुष्यों के सामने आता है तो वे इसे पहचान नहीं सकते।"

"इसके पैरों में पंख क्यों लगे हैं ?"

"क्योंकि यह जल्दी चला जाता है, और एक बार चला जाता है तो इस को फिर कोई दुबारा नहीं पा सकता।"

मन को माँजिए

किसी ने एक राजा से कहा कि आजकल रोमन और चीनी बड़े अच्छे चित्रकार हैं। उन दोनों की चतुरता की तुलना करने की गरज से राजा ने अपने कमरे की एक दीवार चीनी कलाकारों को और सामने वाली रोमन कलाकारों को दी। दोनों के बीच में एक पर्दा डाल दिया गया। रोमन कलाकारों ने तरह-तरह के रंग एकत्र किए और एक-से एक सुन्दर चित्र बनाने लगे। लेकिन चीनी कलाकारों ने न कोई रंग जुटाया और न कोई चित्र बनाया। केवल दीवार को घोटते, माँजते और पालिश करते रहे। जब दोनों ने अपना-अपना कार्य पूरा कर लिया, तो उनकी चित्रकला का निरीक्षण करने के लिए राजा को बुलाया गया।

रोमन लोगों की सुन्दर चित्र-कला को देख कर राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ, और फिर चीनी लोगों की दीवार की तरफ मुड़ा, जिस पर कोई भी रंग इस्तेमाल नहीं किया गया था। राजा ने आश्चर्य से पूछा—'चित्रकला कहाँ है ?" तब चीनियों ने बीच का पर्दा हटा दिया, और रोमन चित्रकला की सारी सुन्दरता की परछाईं उस चीनी दीवार पर पड़ी। इतना ही नहीं, बल्कि चीनी कलाकारों ने अपनी दीवार पर ऐसी अद्भुत पालिश की थी, कि परछाईं असली तस्वीर से भी कहीं खूब-सूरत लगी, और उसकी जगमगाहट के सामने तस्वीर फीकी पड़ गई।

ईश्वर के भक्त चीनी कलाकारों की तरह से ही हैं। वे अपने दिल के शीशे को इस तरह शुद्ध और निर्मल कर लेते हैं, कि सनातन सत्य उस में अपने पूरे प्रकाश के साथ चमकने लगता है। लेकिन पोथी पढ़ने वाले पण्डित रोमन लोगों की तरह हैं। उनका ध्यान केवल बाहरी दुनिया की शोभा तक ही सीमित रहता है।

सदाचार की पोशाक

एक राजकुमार को बहुत सुन्दर, बहुमूल्य और चमकदार वस्त्र पहनने का शौक था। एक दिन वह अपनी इसी सज-धज के साथ अपने पिता के पास गया, तो राजा ने कहा—"बेटा! राजकुमार को ऐसे वस्त्र पहनने चाहियें, जो दूसरे लोग न पहनते हों।"

राजकुमार ने पूछा—"वह कौन-से वस्त्र हैं?" राजा ने कहा—"ताना उसका उत्तम स्वभाव का और बाना उसका उत्तम आचरण का।"

क्या पाठक भी यह वस्त्र पसन्द करेंगे? जीवन की सुन्दरता वस्तुतः इसी वस्त्र से चमकेगी!

हर काम में दिलचस्पी लो !

एक बार एक छोटे स्कूल के दो बच्चों ने शरारत की। अतः उनके अध्यापक ने उन्हें बतौर सज़ा के सौ-सौ लाइनें लिखने को कहा। उनमें से एक लड़का तो मनमें अध्यापक की शिकायत करता रहा, उनकी बुराइयों को सोचता रहा और नक़ल करने के काम को ढकेल-ढकेल कर करता रहा। और दूसरा हर लाइन को ज़रा नये तरीक़े से लिखने की कोशिश करता रहा। थोड़ी देर बाद अध्यापक आए और बोले :—

"चलो, मैं तुम्हारी सज़ा घटाकर पचास लाइनें कर देता हूँ।"

यह सुनकर पहले लड़के ने .खुश होकर कलम दवात किनारे रख दी, पर दूसरे लड़के ने कहा :

महाशय, यदि आप आज्ञा दें तो मैं साठ लाइनें पूरी कर लूँ। पचास तो मैं लिख चुका, पर दस और लिखने का मैंने एक नया तरीक़ा सोच लिया है।"

अध्यापक महोदय बोल उठे, "यह लड़का तो हर काम में इतना रस लेता है कि इसे दण्ड देने का कोई तरीक़ा सोचा ही नहीं जा सकता।"

यदि आप सफल होना चाहते हैं तो यह आवश्यक है कि काम के प्रति आपका अनुराग बना रहे, और काम के लिए उत्साह कभी कम न हो। जो व्यक्ति अपने हर काम को मजेदार बना सकता है, उसे रस लेकर कर सकता है वह असफल क्यों होगा ?

"गजस्तत्र न हन्यते"

एक सिंहनी ने दो बच्चों को जन्म दिया, और इस दुर्बलता के कारण उसका शिकार के लिए जाना बन्द हो गया। सिंह प्रतिदिन उसके लिये भोजन लाने लगा।

एक दिन सिंह को कोई शिकार नहीं मिला, अतएव वह एक छोटे-से गीदड़ के बच्चे को ही पकड़ लाया। उसकी सुकुमारता देखकर सिंह का मन उसे मारने को नहीं हुआ। उसने दुःख के साथ सिंहनी के पास जाकर कहा—"प्रिये, आज मुझे कोई शिकार नहीं मिला, इसलिए इस जम्बुक-शावक को ही पकड़ लाया हूँ। इतने कोमल बच्चे को मैं मार नहीं सका। तू इसे मारकर खा ले, और आज इससे ही अपनी क्षुधा शान्त कर।"

सिंहनी ने उत्तर दिया—"प्रियतम, आप तो नर हैं। स्वभावतः कठोर हैं। जब आप ही इसे न मार सके, तब मैं माता और सद्य-प्रसूता होती हुई इसका हनन कैसे करूँ? मैं आज उपवास ही कर लूँगी; इसे अपने बच्चों के साथ खेलने और बढ़ने दो। मैं इसे दूध पिलाऊँगी।"

जम्बुक-शावक सिंह-शावकों का बड़ा भाई बन गया और उनके साथ आनन्द से खेलने तथा बढ़ने लगा।

एक दिन तीनों शावक खेलते-कूदते दूर निकल गए। वहाँ उन्हें एक हाथी का बच्चा मिला। सिंह-शावक उसे मारने को उतावले हो उठे, परन्तु शृगाल-शावक ने उन्हें समझाया—

"भाई, ऐसा साहस मत करो, वह बहुत बड़ा है, सरलता से हम तीनों को मार डालेगा !"

सिंह-शावकों ने उसकी खूब खिल्ली उड़ाई और वे आगे बढ़ गए। घोर युद्ध ठनता देख शृगाल-शावक भाग खड़ा हुआ। 'बड़े भाई' को भागता देख अन्ततः सिंह-शावक भी लौट आए।

सिंह-शावकों ने माता के पास पहुँचकर सारी कहानी सुनाई और 'दादा' की शिकायत की। दादा ने भी शिकायत की—"मेरी खिल्ली उड़ाते हैं, मैं शौर्य में, विद्या में, रूप में किससे कम हूँ ?"

माता के कान खड़े हो गए। उसने सोचा, कि आखिर यह जम्बुक ही तो है, मेरा दूध पीने से ही सिंह तो नहीं बन सकता। यह मेरे बच्चों को कायर बनाने का प्रयत्न करेगा, तो सिंह और वे इसे किसी दिन मार डालेंगे। अतएव उसने शृगाल-शावक को उत्तर दिया—

"शूरोऽसि कृतविद्योऽसि, दर्शनीयोऽसि पुत्रक !
यस्मिन कुले त्वमुत्पन्नो गजस्तत्र न हन्यते ॥"

हे पुत्र ! तू शूर है, विद्वान है, रूपवान है, परन्तु कठिनाई यह है, कि जिस कुल में तू उत्पन्न हुआ है, उसमें हाथी को नहीं मारा जाता।

कोठियों के निर्माता

एक था, सेठ। उसके थे, दो बेटे। सेठ ने दोनों बेटों को उपदेश दिया कि तुम दुनिया-भर मे अपनी कोठियाँ बनाओ। अब एक लड़का तो सचमुच जगह-जगह कोठियाँ बनाने लगा। आखिर कहाँ तक कोठियाँ बनाता? वह थक गया। उसके धन ने जवाब दे दिया।

दूसरा लड़का अधिक बुद्धिमान था। उसने कोठियाँ बनाने के बजाय जगह-जगह मित्र बनाने आरम्भ किए। इसमें वह ज़रा भी नहीं थका और अपने भाई से बहुत आगे निकल गया क्योंकि उसके लिए मित्रों की कोठियों के द्वार अब हमेशा खुले रहते थे।

तैरना भी जानते हो ?

अनेक विद्याओं में पारंगत एक नवयुवक विद्वान्, देहात में नाव द्वारा एक नदी पार कर रहा था। वह बहुश्रुत था। नाव ऊँची-नीची लहरों पर नाचती हुई अपने लक्ष्य की ओर द्रुतगति से बढ़ी जा रही थी कि इतने में युवक महोदय ज्ञान की तरंग में आ गए।

आकाश की ओर देखते हुए उसने वृद्ध नाविक से पूछा—

"अरे भाई! कुछ नक्षत्र-विद्या जानते हो ?

"क्या ? मैंने तो यह नाम भी नहीं सुना!"

"अरे रे! तब तो तेरी जिन्दगी का एक चौथाई हिस्सा यों ही गया।"

कुछ देर बाद नवयुवक ने फिर पूछा—

"तो, गणित-वणित तो कुछ जानता होगा ?"

"जी नहीं, मैं तो यह कुछ नहीं जानता।"

"तब तो तेरा आधा जीवन यों ही बेकार गया।"

नाविक बेचारा क्या कहता! अपने अज्ञान की ग्लानि में वह मौन था। कुछ समय यों ही बीता कि नदी के उस तीर की ओर छोटी-मोटी टेकरियों पर खड़े अनेक वृक्षों की ओर देखकर ज्ञानगर्वी नवयुवक ने पुनः पूछा—

"हाँ, वृक्ष-विज्ञान शास्त्र के बारे में तो कुछ जानता ही होगा ?"

"नहीं भाई, ना ! मुझे तो कोई सास्तर-वास्तर नहीं मालूम। मैं तो केवल यह नाव चलाना जानता हूँ और दो रोटी का सवाल हल कर लेता हूँ। बस, मैंने कह दिया, मैं पढ़ा-बढ़ा कुछ भी नहीं।"

अपने ज्ञान की गरिमाता में गुमान-भरे नवयुवक ने हँसकर कहा—"तब तो तेरी जिन्दगी का तीसरा हिस्सा भी यों ही पानी में बह गया, नष्ट हो गया !"

साँझ हो चली थी। नाविक दूसरे फेरे की शीघ्रता में था कि एक ओर से जोर की आँधी उठी। हवा के थपेड़ों से नाव डगमगाने लगी। उसमें पानी भरने लगा। जीवन के समक्ष मृत्यु की आशंका का प्रसंग उपस्थित होगया। अब मल्लाह ने युवक से पूछा—"भाई, तूफान जोरों से है। आप तैरना भी जानते हैं या नहीं ?"

"अरे तैरना जानता तो तेरी नाव पर ही क्यों चढ़ता ? भैय्या, मुझे तैरना नहीं आता, बता, अब क्या करूँ ?" युवक ने घबराते हुए कहा।

"अब तो महाराज ! तैरना न जानने से आपकी सारी जिन्दगी ही बेकार पानी में डूब चली।" नाविक ने डूबती नाव पर से धारा में छलांग लगाते हुए कहा।

युवक महाशय दर्शन, भूगोल, खगोल आदि शास्त्रों के गूढ़ से गूढ़ विषयों को तो भली भाँति समझ सकते थे, उन पर घंटों बहस भी कर सकते थे; परन्तु नाव डूबने पर तैरना न आने के कारण अपने प्राण बचाने की शक्ति उनमें नहीं थी। उधर मल्लाह यह भी नहीं जानता था कि शास्त्र

किस चिड़िया का नाम है, पर, वह तैरना भली भांति जानता था, इसलिए प्राण बचा कर किनारे तक पहुँच गया।

मनुष्य को चाहिए कि वह शास्त्रों की गूढ़ बहस के चक्कर में न पड़े। उसे और कुछ आए या न आए, परन्तु जीवन-समुद्र को तैरने की कला तो अवश्य ही आनी चाहिए।

"लल्ला के बाबू हरे हरे !"

एक बार एक विवाहित स्त्री धर्मसभा में कथा श्रवण के लिए गई। कथा के अन्त में जब 'कृष्ण-कृष्ण हरे-हरे' का कीर्तन-पाठ आरंभ हुआ तो वह विचार मे पड़ गई, क्या बोले और क्या न बोले ?

बात यह थी कि उसके पति का नाम कृष्ण था। भला वह अपने पति के नाम का कीर्तन सभा में कैसे करे ? सहसा उसे एक कल्पना सूझी और वह प्रसन्नता से 'कृष्ण-कृष्ण हरे-हरे' के स्थान में 'लल्ला के बाबू हरे-हरे' चिल्लाने लगी। अज्ञानता और अशिक्षा ने कर्मयोगी भगवान कृष्ण को लल्ला का बाबू बना दिया।

अकबर की श्रद्धाञ्जलि

सम्राट् अकबर और वीरबल का पारस्परिक स्नेह-भाव अपनी चरम सीमा पर था। दोनों की मैत्री इतनी बद्धमूल हो चुकी थी कि बाहर में हिन्दू और मुसलमान का भेद होते हुए भी अन्दर से वे अभेद=एक रूप हो गए थे।

एक बार वीरबल सम्राट् की ओर से युद्ध में गए, वहाँ वे षड्यंत्रकारियों द्वारा मार डाले गए! जब यह समाचार अकबर को मिला तो उसके शोक की सीमा न रही। सम्राट् कई दिनों तक रोते रहे, उन्होंने भोजन भी नहीं किया।

इन्हीं शोक-संतप्त दिनों में अकबर के हृदय मे मैत्री-भाव का स्वर झंकृत हुआ—"वीरबल! तुम-सा दानी संसार में कौन होगा? तुम ने दीन जान कर लोगों को अपना सब कुछ दे डाला, किन्तु आज तक किसी को दुःख न दिया था, पर वह असत्त दुःख भी जाते हुए मुझ को दे गए। तुम ने तो अपने पास कुछ भी नहीं रखा।"

दीन जानि सब दीन, एक न दीन्यो दुसह दुखः।
सो तुम हमको दीन, कछु नहि राख्यो वीरबल॥

सुरूपता बनाम कुरूपता

एक दिन सुरूपता (सुन्दरता) और कुरूपता की समुद्र के किनारे भेंट हो गई। दोनों ने परस्पर कहा—"आओ, आज तो दोनों साथ-साथ समुद्र में स्नान करें।"

दोनों ने अपने-अपने कपड़े उतारें और समुद्र में तैरने लगीं। थोड़ी देर में कुरूपता बाहर आई और सुन्दरता के सुन्दर वस्त्रों से अपना शरीर सजा कर चलती बनीं।

जब सुन्दरता भी स्नान करने के बाद तट पर आई, तब उसने देखा कि कपड़े गायब हैं। नंगे रहने में लज्जा का अनुभव होता था, अतः हार कर कुरूपता के ही कुरूप कपड़े पहन कर अपनी राह ली।

इसी कारण आज तक संसार के लोग सुन्दरता को कुरूपता और कुरूपता को सुन्दरता समझने की भूल कर रहे हैं। फिर भी कुछ लोग ऐसे भी हैं—जो सुन्दरता के चेहरे से परिचित हैं, फलतः उसके बदले हुए अभद्र में भी उसे पहचान लेते हैं। कुछ ऐसे भी हैं, जो कुरूपता को पहचानते हैं, फलतः उनकी आँखों के आगे उसका सच्चा रूप अवगुंठन में छिपा नहीं रह सकता।

यह अन्तः सौन्दर्य और बहिःसौन्दर्य का रूपक है। खलील जिब्रान की दार्शनिक भाषा में कभी-कभी बाहर कुरूपता होते हुए भी अन्दर सद्गुणों की सुन्दरता रहती है। और कभी-कभी बाहर सुन्दरता होते हुए भी अन्दर दुर्गुणों की कुरूपता छिपी रहती है। अतः विवेकी साधक को बाहर न देख कर अन्दर ही देखना चाहिए।

अपने कार्य का गौरव !

एक मज़दूर, किसी कारख़ाने में रेलगाड़ी के लिये एक खास तरह की कीलें बनाया करता था। वह न कील को रेलगाड़ी में लगाता था, न रेलगाड़ी को देखता ही था, पर कीलें प्रतिदिन बनाये जाता था।

एक दिन, उसके काम के प्रति करुण होते हुए, किसी भाई ने कहा: "भाई तुम्हारा काम तो बड़ा नीरस है !

इस पर उसने उत्तर में कहा: "मुझे तो यह काम नीरस नहीं लगता। अगर ये कीलें केवल कीलें होतीं तो हो सकता है कि कीलें बनाने का काम नीरस होता, पर ये कीलें नहीं, रेलगाड़ी के पुर्जे हैं।"

आप को यह सुनकर आश्चर्य नहीं होना चाहिये कि यह मज़दूर धीरे-धीरे अपने कारखाने के ऊँचे-से-ऊँचे पद तक तरक्क़ी कर गया। उसकी अपने कार्य के प्रति एक निष्ठा, एक रसता और कल्पना शक्ति के लिए यह पुरस्कार कुछ अधिक भी नहीं था। अस्तु, अपने काम को, भले ही लोगों की निगाहों में वह कितना तुच्छ ही क्यों न मालूम देता हो, आप भूल कर भी तुच्छ न समझिए।

महाकवि कालिदास की ज्ञान-साधना

उज्जैन के राजवंश में विद्योत्तमा नामक एक अत्यन्त विदुषी लड़की थी। उसकी यह दर्प-पूर्ण प्रतिज्ञा थी कि "मैं उसी विद्वान् युवक से विवाह करूँगी, जो मुझे शास्त्रार्थ में पराजित कर देगा।" अनेक विद्वान् आए, शास्त्रार्थ हुए, किन्तु सब हार कर चले गए। क्रुद्ध विद्वानों ने अपमान का बदला लेना चाहा, फलतः षड्यन्त्र रचा गया कि इस अभिमानिनी लड़की का विवाह किसी ऐसे वज्र मूर्ख से कराया जाय कि यह भी जन्म भर याद रक्खे।

कालिदास बचपन में मूर्ख-शिरोमणि था। वह वन में वृक्ष पर चढ़ा, उसी शाखा को काट रहा था, जिस पर कि बैठा हुआ था। मूर्ख की खोज में निकले विद्वानों ने जब यह देखा तो वे बड़े ही प्रसन्न हुए। उसे वृक्ष से उतारा और कहा—"चलो, हम तुम्हारा विवाह करा दें। किन्तु चुप रहना, बोलना बिल्कुल नहीं। कुछ कहना हो तो संकेत से बात करना।"

पण्डितों ने विद्योत्तमा से कहा—"आप बड़े ही धुरंधर विद्वान् हैं। मौन रहते हैं, अतः इनसे शास्त्रार्थ संकेत द्वारा ही कर सकती हो।" शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ। विद्योत्तमा ने एक अँगुली उठाई, उसका अभिप्राय था—क्या ईश्वर एक है? कालिदास ने समझा कि यह मेरी एक आँख फोड़ना चाहती है, अतः उसने क्षुब्ध होकर दो अँगुली दिखाईं, जिसका अभिप्राय था—'मैं तेरी दोनों आँखें फोड़ दूँगा।' पण्डितों ने

सूत्र की व्याख्या की—"चैतन्य तत्त्व के दो रूप हैं, आत्मा और परमात्मा।"

विद्योत्तमा ने अब की बार हाथ की पाँचों अँगुलियाँ दिखा कर यह संकेत किया कि—"पाँच इन्द्रियाँ हैं।" कालिदास ने समझा कि—"थप्पड़ मारना चाहती है।" अतः उसने मुट्ठी बाँध कर घूँसा मारने का संकेत किया। पण्डितों ने उक्त संकेत की व्याख्या की कि—"पाँचों इन्द्रियाँ मुट्ठी में अर्थात् वश में करो।"

विद्योत्तमा बहुत ही प्रभावित हो उठी। उसने समझा कि—"युवक धुरंधर दार्शनिक है और सदाचारी भी है।" विद्वानों का षड्यंत्र सफल रहा, दोनों का विवाह संपन्न हो गया। कालिदास अब भी मौनभाव से रह रहे थे।

रात्रि का समय था। बाहर ऊँट बोला। विद्योत्तमा ने दासी से पूछा "कौन बोल रहा है?" कालिदास चुप न रह सका। उसके मुँह से सहसा निकला—"उट्र।" विद्योत्तमा को अपने पति की मूर्खता का पता लगा। वह क्रोध मे बेभान हो गई और उसने कालिदास को धक्का दे कर घर से बाहर निकाल दिया।

कालिदास का आत्माभिमान जाग्रत् हो उठा। अब वह एक अच्छे विद्धान के पास मन लगा कर अध्ययन करने लगा। जब कालिदास विद्वान् होगया, तो एक दिन रात्रि के उसी समय विद्योत्तमा के द्वार पर पहुँचा। द्वार बन्द था, अतःउसने आवाज लगाई—"कपाटमुद्घाटय चारुलोचने।"—"हे सुन्दर नेत्रों वाली! किवाड़ खोलो।" विद्योत्तमा ने किवाड़ खोले तो देखा—"पतिदेव खड़े हैं।" अतः उसने हँसते हुए कहा—

"अस्ति कश्चिद् वाग्-विशेषः ?"—"वाणी में कुछ विशेषता आगई है क्या ?"

महाकवि कालिदास ने विद्योत्तमा के उक्त वाक्य के एक-एक अंश को लेकर, कहते हैं, तीन महाकाव्यों की रचना की। "अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा" के रूप में कुमारसंभव का, "कश्चित्कान्ता विरहगुरुणा" के रूप में मेघदूत का, और ",वागर्थाविव संपृक्तौ" के रूप में रघुवंश का काव्य-प्रवाह प्रारंभ हुआ। यह है, सरस्वती और श्रम का सुन्दर समन्वय। मनुष्य यदि मन में कुछ करने की ठान ले तो वह क्यर नहीं हो सकता ?

तोते से प्रेम क्यों ?

एक बूढ़े को तोतों से बड़ा ही प्रेम था। वह उन्हें चुगा डालता, पानी पिलाता और घंटों ही उनका उड़ना-बैठना देखा करता। सब को यह देख कर आश्चर्य होता, परन्तु किसी का पूछने का साहस न होता।

एक दिन एक युवक ने पूछा—बाबा, तुम तोतों से इतना प्रेम क्यों करते हो ? वृद्ध ने उत्तर दिया-इस का कारण है भैया ! तोता ही एक ऐसा पक्षी है, जिसे मनुष्य की भाषा में बोलना आता है। और इस बोलने में मनुष्य से बढ़ कर खूबी यह है कि वह सुनी-सुनाई बातों को अपनी ओर से किसी भी प्रकार का नमक-मिर्च लगाए विना ज्यों की त्यों ठीक-ठीक कह देता है ! कितना सत्य-भाषी है !

कुछ अपनी भी चाहिए !

कहानी पुरानी है, पर है बड़े काम की। बाप गधे पर चढ़ा था, और बेटा पैदल चल रहा था। लोग कहने लगे—"कितना स्वार्थी है बाप ! बेचारा बेटा तो पैदल चल रहा है और बूढ़ा खूँसट सवारी कर रहा है।

अब क्या था ? बाप उतर पड़ा और बेटा सवार हो गया। देखिए, अब की बार कुछ लोग क्या कहने लगे—"अब तो जमाना बड़ा ही खराब आ गया है। देखिए, कैसा घोर कलियुग है ? बाप पैदल घिसट रहा है और बेटा कैसी शान से गधे पर चढ़ा जा रहा है!

अब की बार दोनों उतर गए और पैदल चलने लगे। बस लोगों ने कहना शुरू किया कितने मूर्ख हैं। ये ! गधा साथ है फिर भी पैदल ही घिसटते जा रहे हैं।

तंग आकर दोनों एक साथ सवार हो गये तो चर्चा होने लगी—"भई ! घोर कलियुग आ गया है। संसार में दया-धर्म का तो कहीं नाम ही नहीं रहा। मूक जीव पर एक साथ दो मुस्टंडे चढ़े बैठे हैं।

अब की बार बाप-बेटे में गंभीर मंत्रणा हुई। गधे को बाँध कर बाँस पर लटकाया और ले चले। कुछ ही दूर गए होंगे कि फिर सुनाई पड़ा—लो। इन्होंने तो जैनियों को भी थका दिया। ऐसी भी क्या जीव-दया जो गधे को कंधे पर उठाए जा रहे हैं ?

ज्यों ही आगे बढ़े, पुल पर से गुजरे और लोगों ने हँसी में तालियाँ बजाईं कि गधा लातें चलाने लगा। आखिर थम न सका, नदी में गिरा और बह गया।

यह स्थिति होती है, जन-मत का ज़रूरत से ज्यादा भरोसा करने पर। अन्ततो गत्वा गधे से भी हाथ धोना पड़ा। मिला कुछ नहीं, जो कुछ पास था वह भी गया। मनुष्य को कुछ अपनी बुद्धि और स्थिति से भी काम लेना चाहिए कि उसे क्या पसन्द है और उसकी अपनी क्या आवश्यकता है?

सत्संग का महत्त्व

शेखशादी ने एक जगह कहा है—

"मैंने मिट्टी के एक ढेले से पूछा कि तू तो मिट्टी है, तुझ में इतनी सुगन्ध कहाँ से आ गई?"

उस ने उत्तर दिया—"यह सुगन्ध मेरी अपनी नहीं है। मैं केवल कुछ समय तक गुलाब की एक क्यारी में रहा था, उसी का यह प्रभाव है।"

सचमुच अच्छे संग की महिमा ऐसी ही है!

चीनी डाक्टर

चीन में एक विदेशी यात्री ने—एक घर पर बहुत-से दीपक जलते देखे। उसे कौतुहल हुआ कि बिना किसी वार-त्योहार के इसी एक घर पर इतने दीपक क्यों जल रहे हैं?

उसने किसी से पूछा—"इस घर पर इतने दीपक क्यों जल रहे हैं?"

जवाब मिला—"यह यहाँ के मशहूर डाक्टर का घर है।"

फिर पूछा—"क्या यहाँ सब डाक्टरों के घर पर इसी तरह दीपक जलते रहते हैं?"

"नहीं जी, और डाक्टरों के घर इतने दीपक नहीं मिलेंगे। यहाँ का यह रिवाज है कि जिस डाक्टर के हाथ के नीचे रोगी मरता है, उसके घर की छत पर तीन दिन तक उस रोगी के नाम का दिया जलता है। यहाँ के सब से बड़े और प्रसिद्ध डाक्टर होने की वजह से दूर-दूर से इनके यहाँ बेशुमार रोगी आते हैं और स्वभावतः इनके यहाँ मरने वालों की तादाद भी अधिक रहती है। इसीलिये इन डाक्टर साहब की छत हमेशा दीपकों से जगमगाती रहती है।"

यात्री ने पूछा,—"इतने आदमी इनके हाथ से मरते हैं, यह प्रत्यक्ष देखते हुए भी लोगों की श्रद्धा इन पर से हटती नहीं है?"

जवाब मिला, "यही तो तमाशा है भाई, लोग देखकर भी नहीं देखते। लोग सोचते हैं कि महीने में हजारों आते हैं और मरते तो सौ-दो-सौ ही हैं। मरने वाले अपनी क़िस्मत से मरते हैं, उनका डाक्टर क्या करे? जो बच जाते हैं, वे डाक्टर की दवा से बचते हैं। आने वाले हज़ार में अगर नौसौ बचे तो यह मान लिया जाता है—डाक्टर ने सौ को मरने दिया, और नौसौ को तो बचा लिया।"

अन्धे की क्षमा का प्रभाव

आने-जाने वाले आदमियों का क्या ठिकाना, बाज़ार में बड़ी ही भीड़ थी। एक आदमी का पैर भीड़ में कुचला गया बस, वह आवेश में आ गया और उसने कुचलने वाले के मुँह पर एक जोर का थप्पड़ जड़ दिया।

थप्पड़ खाने वाले ने हाथ जोड़ कर बहुत नम्रता से कहा—"महाशय! आपको यह जान कर दुःख होगा कि मैं अन्धा हूँ।"

थप्पड़ मारने वाला पानी-पानी हो गया। अंधे के पैरों में गिरकर क्षमा माँगने लगा। यह है शान्ति रखने का विलक्षण प्रभाव।

विपत्ति बनाम सम्पत्ति !

अवन्ती के नगर-सेठ दाँता एक बार घबराये हुए राजा विक्रमादित्य के पास पहुँचे और कहने लगे—"महाराज ! आज रात को मैं बड़ी ही भयंकर दुर्घटना का शिकार हो जाता आप की कृपा से ही बचा हूँ, अन्यथा खैर नहीं थी, दब कर मर जाता। बात यह हुई कि अपने नये बनाये महल में कल प्रथम दिन मैंने बड़े समारोह के साथ मंगल-मुहूर्त्त में प्रवेश किया था। किन्तु मध्य रात्रि के समय जब मैं अर्ध जाग्रत स्थिति मे सोया हुआ था तो अचानक आवाज आई कि 'मैं गिरता हूँ, मैं भय से अवसन्न हो गया और 'मत गिरो-मत-गिरो' कहता हुआ बाहर भाग आया। मुझे समझ नहीं पड़ता यह क्या बात है ?"

राजा विक्रमादित्य ने वह रात सेठ के महल में गुजारी। ज्यों ही अर्ध रात्रि में आवाज आई—'मैं गिरता हूँ, तो राजा ने निर्भयता से कहा—"अरे गिरते हो तो जल्दी गिरो, देर क्यों करते हो ?" यह कहते ही सुवर्ण पुरुष (सोने का पोरसा) राजा के चरणों में आ गिरा।

विपत्ति से डरो मत । उसे साहस के साथ निमंत्रण दोगे तो विपत्ति के बदले मे संपत्ति का ही उपहार प्राप्त होगा।

बर्तनों के बच्चे !

एक सेठजी के पड़ौस में एक जाट रहता था। जाट ने एक दिन सेठजी से एक रात के लिये थाली, लोटा और कटोरी उधार माँगे।

सेठजी ने कहा—"बर्तनों की क्या ज़रूरत है ? कहीं बर्तन भी उधार दिये जाते हैं ?"

जाट ने कहा !—मेरे मेहमान आये हैं। बर्तनों की कमी है। रात-भर मेहमान रहेंगे। सुबह बर्तन लौटा जाऊँगा।'

सेठजी ने अनमन होकर बर्तन दे दिये।

अगले दिन जाट थाली; लोटा और कटोरी के अलावा एक छोटी थाली, एक छोटा लोटा और एक छोटी कटोरी भी लाया।

सेठजी ने कहा,—मेरे बर्तनों के साथ तुम और बर्तन क्यों लाये ?'

जाट ने कहा,—सेठजी ये बर्तन मेरे नहीं हैं।'

सेठजी ने कहा,—तो मेरे भी नहीं हैं।'

जाटने कहा,—'आपके बर्तनों ने रात में बच्चे दिये होंगे। इसलिए वे आपके हैं। आप उन्हें ले ले।'

सेठजी ने बड़ी खुशी के साथ बर्तन रख लिये।

कुछ दिनों बाद वह जाट सेठजी के पास फिर आया और बोला, 'सेठजी मुझे रात-भर के लिए पचास बर्तनों की आवश्यकता है। लड़की की ससुराल से काफ़ी आदमी आ गये हैं।'

सेठजी ने वर्तन दे दिये और अगले दिन जाट ५० वर्तनों के साथ ५० और वर्तन लाया और कहने लगा 'सेठजी आप के वर्तन तो बच्चे देते हैं।'

सेठजी ने वड़ी खुशी से वर्तन रख लिये और मन ही मन कहने लगे क्या उल्लू फँसा है।

कुछ महीनों बाद जाट घबराया हुआ सेठजी के पास आया और कहने लगा, 'सेठजी! मेरी इज्जत आपके हाथों है। जाटों के राजा आये हैं। उनके साथ उनके दरबारी भी हैं। सो आप सोने-चाँदी के सौ वर्तन दे दें और नौकरों के लिए सौ पीतल के वर्तन। परसों आप को लौटा जाऊँगा।'

सेठजी ने वड़ी खुशी से वर्तन दे दिये और इस आशा मे वे बड़े प्रसन्न थे कि उनके वर्तनों के साथ बच्चे भी आयेंगे।

तीसरे दिन जाट सेठजी के पास मुँह लटकाये, मूँछे और सिर मुँड़ाये आया और गिड़गिड़ा कर बोला,—"सेठजी ज़ुल्म होगया। आप के सब वर्तन मर गये। मैं क्रिया-कर्म करके आया हूँ। मूँछे और सिर भी मुँडा आया हूँ।"

सेठजी ने बिगड़ कर कहा,—अरे क्या वकता है? मेरे हजारों रुपयों पर तूने पानी फेर दिया। कहीं वर्तन भी मरा करते हैं?

जाटने गंभीर हो कर कहा,—सेठजी, मैं क्या करूँ? जब आप इस बात को मानते हैं कि वर्तन बच्चे देते हैं। जो वर्तन बच्चे दे सकते हैं, वे मर भी सकते हैं। इस मे आश्चर्य की क्या बात है?

लोभी सेठ हाथ मलता रह गया!

सास की सेवा

एक गाँव में माँ, बेटा और पतोहू (पुत्र-वधु) तीनों एक घर में रहते थे। पतोहू ज़रा खचड़े स्वभाव की थी, सास को दुःखित रखती। पति, स्त्री को डाँट-डाँट कर बेहया न बनाकर कुशलता से समझाने के किसी अच्छे मौक़े की तलाश में था। वह न माँ का पक्ष लेता, न स्त्री का। अपने को इन दोनों के झगड़े से प्रायः अलग रखता था।

स्त्री अपनी सास को टूटे कठवत (कठुए) में खाना दिया करती थी। संयोग वश, एक दिन माँ के हाथ से कठवत गिर कर दो टुकड़े हो गया। बेटे ने माँ को डाँटा। लड़के की इस हरकत से उसे अचंभा हुआ। वह बोली 'बेटा ऐसा क्या अपराध हो गया। इस कठवतिया के टूटने में,यह तो पहले से ही "चिरोई हुई थी। दो पैसे का कठवत टूटने पर इतनी नाराज़गी ?"

बहू भी सुन रही थी, उसे भी अपने पति की माँ के प्रति डाँट पर ताज्जुब था। मन में ज़रा खुश भी थी कि सास की कहा-सुनी हो रही है। बेटे ने कहा—"माँ, कठवत के टूटने से मेरी नाराज़गी का कोई सम्बन्ध नहीं है। मुझे तो बुरा लगा कि तुमने कठवत नहीं, एक परम्परा तोड़ दी।" माँ ने पूछा—कैसे ? वह बोला—"तुम्हें तुम्हारी बहू टूटे कठतव में खाना देती है तो परम्परया जब इसकी बहू आवेगी तो इसे भी टूटे कठवत में खाना देगी। उसके आने तक यह टूटा कठवत घर में मौजूद रहना चाहिए था, जिसमें वह सारी परम्परा देख समझले कि सास के साथ कैसा व्यवहार किया जाता है ?"

पति की इस गहरी चोट ने पत्नी को होश में ला दिया। तब से सास के प्रति उसका सारा व्यवहार बदल गया। अब तो सास की वह सेवा होने लगी कि सारा मुहल्ला वाह-वाह करने लगा।

स्वराज्य का उपहास

सन् १६३० में हिन्दी के दैनिक पत्र ने 'हास-परिहास' स्तम्भ मे लिखा था कि एक सज्जन बिना टिकट सफ़र कर रहे थे। टिकट चैकर ने उन्हें पकड़ा, तो बोले—"और कुछ दिन तुम तंग कर लो। अब स्वराज्य मिलने वाला है, फिर तो जहाँ चाहेंगे, बिना टिकट घूमा करेंगे।"

स्वराज्य से पहले यह परिहास था, और अब? अब यह सत्य हो गया है। स्वराज्य क्या मिला, जनता का विवेक ही नष्ट हो गया। अधिकार की मारा-मारी है, अधिकार के साथ उत्तरदायित्व भी कुछ है, इसका कोई भाव भी नहीं रहा।

यह कलियुग है !

किसी शहर का एक छोटा सा व्यापारी अपने व्यापार के लिए आस पास के छोटे-छोटे गाँवों में फेरी लगाया करता था। साथ मे रसोई बनाने का सामान भी रखता था।

एक वार वह किसी गाँव मे पहुँचा तो उसे तो अवकाश नहीं था कि भोजन वनाने की झंझट में पड़े। अतः वह गाँव की एक गरीब वुढ़िया के पास पहुँचा और दो व्यक्तियों के भोजन का सामान देकर अपने डेरे पर काम करने चला आया। उसने सोच लिया था कि मुझे वनी-वनाई रोटी खाने को मिल जायगी और वुढ़िया भी मेहनत के वदले मे कुछ खा लेगी।

वुढ़िया रोटी वनाने वैठी थी कि उसका लड़का आ पहुँचा। वह दो दिन का भूखा था। वुढ़िया ने सारा भोजन अपने वेटे को खिला दिया।

एक घण्टे वाद वह व्यापारी भोजन करने आया। 'माँ जी, भोजन तैयार है?' 'हाँ, वेटा भोजन तैयार है।' व्यापारी थाली लेकर वैठा तो वुढ़िया ने छींके से उतार कर पहले दिन की वासी रूखी-सूखी रोटियाँ परोस दीं। उसे वड़ा आश्चर्य हुआ कि "वह तो उसे ताजी रोटी वनाने के लिए सामान देकर गया था, किन्तु ये रोटियाँ वासी कैसे हैं?"

पूछने पर बुढ़िया ने उत्तर दिया—"बेटा, यह कलियुग है। इसमें ऐसा ही हो जाता है। तू जानता नहीं, समय बड़ा खराब आगया है।"

व्यापारी ज़रा चतुर था। उसने कहा—"माँजी, सचमुच समय बड़ा खराब है। क्या किया जाय, कलियुग जो ठहरा। पर मुझ से ये रोटियाँ यों तो खाई न जायँगी। कोई हो तो छोटा-सा गिलास दे दीजिए, ताकि थोड़ा-सा दूध ही ले आऊँ।"

बुढ़िया लालच मे आ गई। उसने एक बड़ा पीतल का गंज लाकर उसके हाथ में थमा दिया। सोचा—बड़ा बर्तन देने से दूध कुछ ज्यादा लायगा, ताकि बचा हुआ मेरे भी काम आ जायगा।

वह दूध वाले के यहाँ पहुँचा। पूछा—"क्यों भाई, दूध का क्या भाव है?" उत्तर मिला—"रुपये का दो सेर।" व्यापारी ने कहा—"भाई, रुपया तो मेरे पास है नहीं। ऐसा करो, रुपये के बदले में यह गंज ले लो। आठ आने का सेर-भर दूध अपनी मिट्टी की हँडिया मे दे दो और आठ आने वापस लौटा दो।"

घर पहुँचने पर बुढ़िया ने जो देखा तो आश्चर्य में पड़ गई।

"बेटा, गंज तो तुम पीतल का ले गए थे, यह मिट्टी का कैसे आया?"

"माँ जी, ले तो मैं पीतल का गंज ही गया था, पर हो गया वह मिट्टी का। मैं क्या करूँ, कलियुग जो ठहरा!"

दोनों ने एक दूसरे को समझ लिया और कलियुग समाप्त हो गया।

बुद्धि का चमत्कार

एक विद्यार्थी ने अपने युग के एक महान् ख्याति प्राप्त चित्रकार से पूछा—"महाशय ! आप रंग किस चीज से मिलाते हैं ? आपके रंग बड़े ही सुन्दर होते हैं।"

चित्रकार से सहज भाव में उत्तर मिला—"बुद्धि से।"

वस्तुतः जीवन-क्षेत्र में प्रत्येक काम करने से पहले मनुष्य को बुद्धि की अपेक्षा है। बुद्धि ही कृति में सुन्दरता लाती है।

भारत का अपमान

एक भारतीय युवक विद्यार्थी यूरुप की किसी लायब्रेरी मे पहले-पहल गया और वहाँ किसी पुस्तक से एक सुन्दर चित्र निकाल लाया।

दूसरे दिन ही बोर्ड लगा दिया गया—"भारतीयों का प्रवेश निषिद्ध है।" एक मूर्ख लालची की अप्रामाणिकता से समस्त देश का गौरव मिट्टी मे मिल गया !

अध्ययन बड़ा या अनुभव

एक राजकुमार जो वर्षों के लंबे अभ्यास के बाद ज्योतिष-शास्त्र की विद्या में पारंगत हो चुका था, अपने पिता के सामने परीक्षा देने बैठा !—पिता ने मुट्ठी मे कुछ दबा रक्खा था, पूछा—"बताओ, मेरी मुट्ठी में क्या है ?"

राजकुमार ने लंबी गणित करने के बाद उत्तर दिया—"आपकी मुट्ठी में जो चीज है वह गोलाकार है और उस में पत्थर जड़ा हुआ है।"

"हाँ, ठीक है पर बताइए क्या चीज़ है ?"—राजा ने चीज का नाम जानना चाहा।

राजकुमार ने बहुत सोचा, कुछ ध्यान में न आया। ज्योतिष-शास्त्र इतनी दूर तक तो ले आया था, परन्तु आगे तो अपने अनुभव और प्रतिष्ठा को ही दौड़ लगानी थी। और वह राजकुमार में थी नहीं। बोला—"बताऊँ, चक्की का पाट है।"

अँगूठी को चक्की का पाट बताने वाला राजकुमार क्यों हँसी का पात्र हुआ ? उस मे यह तर्क बुद्धि न थी कि चक्की का पाट मुट्ठी मे उठ कैसे सकता है ? शास्त्राध्ययन के साथ प्रतिभा का स्वतन्त्र विकास भी आवश्यक है।
